स्वात्मनः स्थित्यर्थमेव भिक्षाटनं निवृत्ते शरावसंपत्तिं चरेत् । यावता अन्नेनात्मनः तृप्तिं स्यात् तावदेवान्नं भिक्षेत् । नाधिकं कदाचन भिक्षेत् । ब्राह्मणसन्यासिनां द्विजातिरिक्तगृहे भिक्षा न कर्तव्येति पूर्वं निरूपितम् । तत्रेदमुच्यते

द्विजाभावे तु सम्प्राप्ते उपवासत्रये गते ।
भैक्षं शूद्रादपि ग्राह्यं रक्षेत् प्राणान् द्विजोत्तमः ॥

विष्णुस्मृतौ चोक्तम्-

स्ववृत्तस्य गृहे भिक्षेन्नतु तेष्वेवनित्यशः ।
अभावे वहुगेहानां तेषु भिक्षेदलोलुपः ॥

जिसका घरका द्वार खुला हुआ है उसी के घर में भिक्षा करने के उद्देश्य से प्रवेश करे। घरका दरवाजा यदि वन्द है तो भिक्षा के लिये वन्द दरवाजा वाला घर में जाने का प्रयास नहीं करे, कहीं पर भी संन्यासी अपने भिक्षा हेतु उपस्थिति की ध्वनि न करे, तथा आवाज देकर अथवा द्वार खटखटा कर द्वार नहीं खुलाये। किसी खिडकी या गृह छिद्र से भिक्षा ग्रहण नहीं करना चाहिये। भिक्षा ग्रहण करने का विधान आचार्य श्रीबौधायनजी के द्वारा कहा गया है-

संन्यासी भिक्षा काल में दक्षिण भाग में त्रिदण्ड रखकर तत्पश्चात् दाहिनी भुजा से उसे सम्भालकर भिक्षापात्र वाँया हाथ में रखकर उस पात्र से दाहिना हाथ का स्पर्श करावे और आदित्य पुराण में कहा भी गया है कि दिन के दूसरे भाग में अर्थात् दोपहर वाद पवित्र एवं मौन रहता हुआ प्रतिदिन पवित्रता आदि गुणों से युक्त अन्न की भिक्षा करे। उस समय एकमात्र वस्त्र हो मन्द मन्द गति हो आत्मा अत्यन्त शुद्ध हो एवं युगान्त दर्शी हो। जिस कन्या का वैवाहिक संस्कार नहीं हुआ है ऐसी कन्या के हाथ से प्रदान की गयी भिक्षा को संन्यासी ग्रहण नहीं करे। तथा रजस्वला स्त्री के द्वारा प्रेरित किसी अन्य व्यक्ति के हाथ से भिक्षा ग्रहण नहीं करे। किसी प्राणी के अवयव द्वारा दी गयी भिक्षा, अथवा लौह पात्र से प्रदान की गयी भिक्षा को संन्यासी स्वीकार कदापि न करे। कोई संन्यासी भिक्षा करने आगया ऐसी स्थिति में दुःखी होकर स्वयं को पीडितकर जो स्वल्प मात्रा में भिक्षा प्रदान करता है अथवा लगातार पाँच दिन पर्यन्त अथवा सात दिन पर्यन्त भिक्षा मांगने के लिये उपस्थित होने पर भी भिक्षा प्रदान

दर्व्या देयं घृतं चान्नं लवणं व्यञ्जनं तथा ।
अपक्कं स्नेहपक्कं च नतु दर्व्या कदाचन ॥

हस्तदेयं तु यद्दर्व्या दर्व्यादेयं तु हस्ततः ।
एतद् यो ब्राह्मणोऽश्नीयात् सोऽश्नीयान्मूत्ररेतसी ॥

गङ्गातोयाभिषिक्तां तु भिक्षायोऽश्नाति योगवित् ।
न तत् क्रतु शतैरिष्ट्वा फलं प्रप्नोति मानवः ॥

सान्तपनसहस्त्रं तु चान्द्रायणशतानि च ।
अश्वमेधाष्टकं चैव तद्विष्णोः शेषमुत्तमम् ॥

नहीं करता है। उस घरका सर्वथा भिक्षा हेतु परित्याग करदे, क्योंकि भिक्षा नहीं देने की भावना उस गृहपति की प्रमाणित होती है। क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है→भोजन की पवित्रता होने पर अन्तःकरण की पवित्रता होती है। अन्तःकरण पवित्र होने पर संसार के समस्त नश्वर बन्धन अपने आप छूट जाते हैं। अतः संन्यासियों को भिक्षान्न की पवित्रता हेतु सजग रहना चाहिये।

लस्सी छाछ दूध, दलिया, फल मूल पिण्ड, खजूर सत्तू ये सभी अन्न संन्यासियों के लिये मोक्ष सिद्धि दायक शुभ आहार कहे गये हैं। पत्र पुष्प ग्रामीण, अथवा जङ्गली फल, तक्र दही और शाक ये सभी भक्ष्य लघुपाकी (सरलता से पचने योग्य) होने के कारण प्रशंसनीय भिक्षा कही गयी है।

अनेक घरों से याचनाकर लायी गई भिक्षा को सम्यक् प्रकार से लाकर, पैरों को धोकर आचमन करके तीनवार प्राणायाम करने के वाद सम्मिलित भिक्षा समूह को "ॐ" इस प्रणव का उच्चारण कर अभिमन्त्रित करके संन्यासी भोजन करे। यह विषय विष्णु स्मृति में कहा गया है। मुखको ऊपर की ओर उत्तान करके ब्रह्म की भावना से संस्कारित होकर ॐप्राणाय स्वाहा, ॐअपानाय स्वाहा, ॐसमानाय स्वाहा, ॐउदानाय स्वाहा, ॐव्यानाय स्वाहा इन पाँच मन्त्रों से पञ्च प्राणों को आहुति प्रदान करे। प्राणाहुति देने में उपर्युक्त वेद सम्मत मन्त्र होना चाहिये। यह आहुति पाँचो प्राणों के लिये संन्यासी के द्वारा अपने मुख में ही होना चाहिये। किन्तु आहुति के अन्न को दाँत और ओठों से योगी स्पर्श नहीं करे। आहुति में ॐकार पूर्वक एवं स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। भिक्षान्न को भोजन करते हुये संन्यासि

विष्णोर्नैवेद्यसंशुद्धं मुनिभिर्भोज्यमुच्यते ।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥
गङ्गातोयञ्च भैक्षञ्च वैष्णवान्नं विशेषतः ।
आनश्वान्मोचरेत् पापं मन्त्रपूतं हविर्यथा ॥
गङ्गायाः सलिलं पुण्यं शालग्रामशिला तथा ।
भिक्षान्नं पञ्चगव्यञ्च पवित्राणि युगे युगे ॥
विष्णुस्मृतौ चोक्तम्-
न भिक्षायां भवेद्दोषो न भिक्षा स्यात् प्रतिग्रहः ।
सोमपानसमा भिक्षा तस्मादहरहश्चरेत् ॥

को किसी भी परिस्थिति में वांया हाथ से अन्न को नहीं छुना चाहिए। नहीं पैरों को न शिर को अथवा वस्त्र को स्पर्श करे तथा पैर से पात्र का स्पर्श भी न करे।

संन्यासी अपने आप के देह संरक्षण के लिये ही जब घरों में बर्तन की आवाज वन्द हो जाय। अर्थात् घर वालों का भोजनादि सम्पन्न हो चुका हो उस समय में भिक्षाटन करे। जितने अन्न से अपनी तृप्ति सम्पन्न हो उतनी ही भिक्षा करे। अधिक अन्न संग्रह करने की इच्छा से कभी भी भिक्षा नहीं करे। ब्राह्मण संन्यासी के द्वारा ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के अतिरिक्त अन्य घर में भिक्षा नहीं करनी चाहिये यह पहले प्रतिपादन किया जा चुका है। इस सम्बन्धित विषय में कहा जाता है कि जहां द्विजाति का अभाव हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर तीन दिन उपवास करते हुये बीत जाने पर ब्राह्मण श्रेष्ठ संन्यासी अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये शूद्र के घर से भी भिक्षा कर सकता है। और विष्णु स्मृति में कहा है→अपने समान आचार विचार धर्म वाले गृहस्थों के घर में भिक्षा करनी चाहिये, किन्तु प्रतिदिन उन्हीं घरों में भिक्षा नहीं करनी चाहिये। किन्तु यदि समान धर्मवाले लोगों के बहुत घर नहीं हो तो उन्हीं घरों में लोलुपता से रहित होकर अर्थात् उदासीन भाव से भिक्षा करे। करछुला से देने योग्य घृत अन्न व्यञ्जन तथा लवण की करछुल से ही ग्रहण करे। किन्तु जो नहीं पकाने योग्य है ऐसा अन्न अथवा तेल में पका हुआ अन्न कभी भी करछुल से देने पर स्वीकार नहीं करे। हाथ से देने योग्य वस्तु को तो जो करछुल से स्वीकार करता है तथा करछुल से देने योग्य अन्न को जो हाथ से स्वीकार करता है इसतरह के अन्न को

आहारस्य तु द्वौ भागौ तृतीयमुदकस्य च ।
वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयत् ॥

भोजनावसाने च षोडशप्राणायामान् कुर्यात् । ततो जपध्यानेतिहास कथावार्तादिभिः दिनशेषं गमयेत् ।

सामान्यलोकस्यापि श्रीमद्रामायणपुराणेतिहासकथादिभिर्धर्म प्रवृत्तिर्जायते । तेषु भगवद्भक्तिजननार्थं लोकस्य धर्माभ्युदयार्थञ्च श्रीमद्रामायणेतिहासपुराणादीनां यतिः कथां कुर्यात् । तदुक्तं श्रीगीतायाम्-

जो ब्राह्मण भोजन करे वह मूत्र एवं वीर्य का ही भोजन करता है ।

जो योग तत्व वेत्ता संन्यासाश्रमी गङ्गाजल से अभिषिक्त भिक्षा को भोजन करता है उसमें जो पुण्य लाभ होता है वह पुण्य फल सैकडों यज्ञ करके भी मानव नहीं प्राप्त करसकता है । एक हजार सातवन व्रत और एक सौ चान्द्रायण व्रत आठ अश्वमेध यज्ञ सम्पादन करने का जो पुण्य फल प्राप्त होता है उसकी तुलना में भगवान् विष्णु के प्रसाद का सेवन करना श्रेष्ठ है । भगवान् श्रीरामजी का नैवेद्य सम्यक् प्रकार से विशुद्ध कहा गया है । तथा संन्यासियों के द्वारा भोजन करने योग्य है ऐसा कहा जाता है । श्रीरामजी से अतिरिक्त अन्य देवता का नैवेद्य को पाकर प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण व्रत करे । इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् का प्रसाद यदि उपलब्ध हो तो गृहस्थों के घर में भिक्षा नहीं भी की जा सकती है । विशेष रूपसे गङ्गाजल और भिक्षा समूह का अन्न तथा वैष्णव का अन्न नख से आरम्भ कर समग्र शरीर को पवित्र करता है । जिस प्रकार मन्त्र से पवित्र हविष्यान्न मानव के समग्र शरीर को पवित्र करता है । गङ्गा का जल पुण्यजनक शालग्राम की शिला भिक्षा का अन्न और पञ्चगव्य ये सभी प्रत्येक युग में पवित्र कहे गये हैं ।

और विष्णु स्मृति में भी कहा गया है, भिक्षा में दोष नहीं होता है और भिक्षा का अन्न प्रतिग्रह नहीं कहा जाता है । यज्ञ में सोमरसपान के समान भिक्षा का अन्न कहा गया है । अतः प्रति दिन भिक्षाटन करना चाहिये । भिक्षान्न भोजन करते समय उदर के दो भाग को अन्न से भरना चाहिये । तीसरा भाग पानी से भरना चाहिये और वायु का सञ्चार करने के लिये चौथा भाग खाली रहने देना चाहिये । भोजन सम्पन्न करलेने के पश्चात् अन्त में सोलहवार प्राणायाम करे । तत्पश्चात् फुर्सत होने पर जप

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यथा ।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्यमहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥

ततः सायंकाले सूर्यास्तमनात् पूर्वं स्नात्वा पूर्वोक्तक्रमेण सन्ध्यामुपास्य सूर्यायार्घ्यं च प्रदाय कर्मसमर्पणं श्रीरामचन्द्राय विधाय । सूर्योपस्थानं तत् समर्पणं च सर्वदेवमयाय श्रीरामाय कृत्वा, वेदोपनिषत् श्रीमद्रामायणप्र भृतीनां स्वाध्याय योग्यानांग्रन्थानामध्ययनं विधाय जपहोमदेवतार्चनादिभिः ध्यान श्रीमद्रामायण इतिहास और पुराण की कथावार्ता आदि से अवशिष्ट समय को वितावे । ऐसा देखा जाता है कि सर्व साधारण मनुष्य की भी श्रीमद्रामायण इतिहास पुराणादि सम्बन्धि धार्मिक कथाओं में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । अतः साधारण अनपढ लोगों में भी भक्ति भावना जागृत करने के लिये एवं संसार का धार्मिक अभ्युदय करने के लिये श्रीमद्रामायण इतिहास पुराण आदि की कथा श्रीवैष्णव सन्यासी करे। यही विषय गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी अपने श्रीमुख से कहते हैं कि-मैं वेद शास्त्रों से तपस्या से दान से एवं यज्ञ याग आदि से उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ तथा मुझे नहीं जाना जासकता है जितना कि इसप्रकार भक्तिभावना द्वारा मुझे देख सकते हो। हे अर्जुन ! इसप्रकार के गुणगण से परिपूर्ण मुझको अनन्य भक्तिभाव से ही देखा एवं जाना जा सकता है । तात्विक रूपसे जानने देखने एवं तात्विक रूपसे श्रीराम तत्त्व में प्रवेश करने के लिये अनन्य भक्ति को छोडकर दूसरा योग्य साधन नहीं है अतः जनसमुदाय में भक्तिभाव उत्पन्न करने के लिये श्रीमद्रामायण एवं पुराण कथा आदि की वार्ता से श्रीवैष्णव संन्यासी को कालक्षेप करना चाहिये ।

तत्पश्चात् सायं काल में भगवान् सूर्य के अस्ताचल पर जाने से पहले स्नान करके पूर्व वर्णित क्रम से सन्ध्योपासन से आरम्भकर सूर्य को अर्घ्य देकर एवं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को कर्म समर्पण करके सूर्योपस्थान तथा उसका समर्पण सर्वदेव स्वरूप भगवान् श्रीरामजी को निवेदन कर वेद उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अथवा स्वाध्याय करने योग्य जगदाचार्यजी से निर्दिष्ट अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करके जप होम तथा

रात्रेः प्रथमं यामं नयेत् । देवमन्दिरे निवसन् भगवत् प्रसादस्वरूपं भोज्यं भुक्त्वा, शतं प्राणायामान् विधाय शयनं कुर्यात् । निशायाः पश्चिमे प्रहरे उत्थाय पुनः ब्रह्माभ्यासमारभेत् । तदुक्तम्-

देवोद्याने साधुगृहे महालयसरित्सु च । रात्रौ गृह्णन्न दुष्येत तटाके विमले ह्रदे ॥

यतिः यथाशक्ति यथावशरं च मोक्षकामनया-यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधीनां योगशास्त्रोक्तदिशा अभ्यासं कुर्यात् । सम्यग् दर्शनसाधनत्वेन तेषां विधानात् । एतेषां स्वरूपनिरूपणं ग्रन्थान्तरेषु कृतम् ततः एव तज्ज्ञानं विधेयम् ॥२५॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीनस्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्व रानन्दाचार्यस्यकृतौ श्रीवैष्णवसंन्यास मीमांसायां यतीनां दिनचर्या निरूप णात्मकः प्रकरणः सम्पन्नः । शुभं भूयात् ॐ

सर्वेश्वर श्रीरामजी का पूजन आदि से रात्रि का प्रथम पहर वितावें । तत्पश्चात् देवता के मन्दिर में निवास करते हुये भगवद् प्रसाद स्वरूप फलादि को भोजन करके एक सौ प्राणायाम कर शयन करे । रात के अन्तिम पहर में उठकर पुनः ब्रह्म साक्षात्कार का अभ्यास प्रारम्भ करे यही वात शास्त्रों में कही गयी है कि देवताओं के मन्दिर में साधु पुरुष के स्थान में महालय और नदियों में तालाब तथा निर्मल ह्रद में रात्रि के समय भी भोजन करता हुआ दूषित नहीं होता है ।

संन्यासी अपनी शक्ति एवं अवसर के अनुरूप मोक्ष की अभिलाषा से यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का योग शास्त्र के कथनानुसार अभ्यास करे । क्योंकि उपर्युक्त योगाङ्गों का सम्यक् दर्शन का साधन होने के कारण विधान किया गया है । इन यम, नियम, आदि का अन्य ग्रन्थों में स्वरूप प्रतिपादन किया गया है । पाठकों को उन्हीं ग्रन्थों से इनका ज्ञान करना चाहिये ॥२५॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दा चार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में संन्यासियों के भिक्षा-दिनचर्या प्रतिपादन स्वरूप यह प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

ॐ

ॐ संन्यासदीक्षाधिकारः त्रिदण्डधारणाधिकारश्च ॐ

सीताभिन्नं रामचन्द्रं रामानन्दं यतीश्वरम् ।
गुरुं रामप्रपन्नं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥१॥

यथा कुलालो घटरचनायां समर्थो न पटरचनायां तेन कुलालस्य घटनिर्माणेऽधिकारः, स्वर्णकारो भूषणनिर्माणेऽधिकृतः, तन्तुवायश्च पटेऽधिकृतो भवति, एवञ्च यो यत्र जातिस्वभावादेव येषु येषु कार्येषु दक्षो भवति तस्य तत्राधिकारो लोकव्यवहारसिद्धः प्रेक्षावद्भिरवलोक्यते, एवमेव चत्वार आश्रमाः सन्ति । तेषु आश्रमेषु समेषां मानवानां अधिकारो नवेति विविच्य प्रवेशाय जिज्ञासायां विषयेऽस्मिन् वर्णाश्रमाचारभेदेन लोकव्यवहा रादेव अधिकारसिद्धिर्विलोक्यते । यथा शिशोः संन्यासिनश्च विवाहाधिकारो नास्ति, शिशोरयोग्यत्वात् संन्यासिनश्च उच्चाश्रमादधः पतने शास्त्रविरोधात्

卐 संन्यासदीक्षाधिकार तथा त्रिदण्डधारणाधिकार 卐

जगज्जननी श्रीसीताजी से अभिन्न श्रीरामचन्द्रजी यतिराज आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी और गुरुवर योगीन्द्र श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज को मैं रामेश्वरानन्दाचार्य पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥१॥

यह इस संसार में देखा जाता है कि जिसप्रकार कुम्भार घडा आदि मृत्तिका का निर्माण करने में समर्थ होता है, उस प्रकार वस्त्र आदि के निर्माण में समर्थ नहीं होता है। इससे कुम्भकार का घट रचना में अधिकार है। सुनार आभूषण आदि निर्माण में समर्थ होता है इसलिये उसमें अधिकार युक्त होने पर भी घटादि की रचना नहीं कर सकता है। और जुलाहा कपडा बनाने का अधिकारी है, इसप्रकार जो जिस कार्य में अपने जाति स्वभाव से ही जिन जिन कार्यों में दक्ष होता है, उस कार्य में उसका अधिकार लोक व्यवहार में सिद्ध है। ऐसा विषय वस्तु को जानने वाले विद्वानों के द्वारा देखा जाता है। इसीप्रकार ब्रह्मचर्य-गृहस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास भेद से चार आश्रम हैं। उन उन आश्रमों में सभी मनुष्यों का अधिकार है अथवा नहीं इसका विवेचन कर प्रवेश के लिये जिज्ञासा के इस विषय में वर्ण, आश्रम तथा आचार व्यवहार के भेद से लोक व्यवहार से ही अधिकार सिद्धि देखी जाती है। जिसप्रकार एक बालक और संन्यासी का विवाह करने का अधिकार नहीं है। क्योंकि बालक

केचन पतिताः सन्त अपि गृहस्थाश्रमे विहितप्रवेशाः सन्तानपरम्परामजनयन्, लोकशास्त्रनिन्दां चावहेलनादृष्ट्या विलोक्य संसारसुखमन्वभूवन् । किन्तु लोकेन शास्त्रेण च योग्यस्यैव तत्र तत्राश्रमेषु प्रवेशाय अनुमन्यते । तथा अत्र संन्यासाश्रमप्रवेशे दीक्षाग्रहणे च संन्यासलक्षणभूतस्य त्रिदण्डस्य धारणे काषायवस्त्रपरिधाने, स्वेतवस्त्रपरिधाने च कस्य कस्याधिकारः । कस्यकृते निषेधश्चेति विवेचनमत्यावश्यकम् । अन्यथा व्यवस्थायां दोषोत्पत्तौ सम्प्रदाये समाजे च अव्यवस्थैव व्यवस्था स्यात् । तस्माद् विषयेऽस्मिन् लोकशास्त्रव्यवहारसिद्धये विवेचनं क्रियते । यतिस्वरूपं व्युत्पत्तिं च मेधातिथिराह-

वेदाभ्यासेन यज्ञेन तपसावीतकल्मषः ।
विरक्तोमानुषैर्भोगैर्दिव्यैश्चस्मृतिदर्शितैः ।

को विवाह करने के अयोग्य होने के कारण और संन्यासी का उच्च आश्रम से निम्न आश्रम में आना यह अधः पतन है, इसमें लोक व्यवहार और शास्त्र का विरोध होने से अधिकार नहीं है । यह देखा जाता है कि कुछ लोग पतित होकर भी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश प्राप्त करके अपनी सन्तान परम्परा को उत्पन्न किये । लोक व्यवहार एवं शास्त्र की निन्दा को अवहेलना की दृष्टि से देखकर सांसारिक सुख का अनुभव किये । किन्तु लोक व्यवहार एवं शास्त्र के द्वारा उन-उन आश्रमों के योग्य पुरुष को ही उन-उन आश्रमों में प्रवेश के लिए अनुमति दी जाती है उसीप्रकार इस संन्यासाश्रम में प्रवेश एवं दीक्षा-ग्रहण में संन्यास का विशेष लक्षण बना हुआ त्रिदण्ड के धारण में कषाय रंग में रंगा हुआ वस्त्र पहनने में और श्वेतवस्त्र पहनने में किसका-किसका अधिकार है और किसके लिए निषेध है । इस वस्तु का विवेचन करना अत्यन्त आवश्यक है । यदि ऐसा नहीं करे तो व्यवस्था में दोष उत्पन्न हो जाने पर सम्प्रदाय एवं समाज में अव्यवस्था ही व्यवस्था हो जायगी । इसिलिए इस विषय में विवेचन किया जाता है । संन्यासी का स्वरूप एवं यति शब्द की व्युत्पत्ति को स्मृतिकार मेधातिथि कहते हैं-वेद शास्त्रों का अभ्यास (पुनः-पुनः पठन) यज्ञ और तपस्या के द्वारा जिसका पाप समूह समाप्त हो चुका है । अलौकिक धर्म शास्त्रों के द्वारा दिखाए गये दिव्य मार्ग से जो मनुष्य लोक में होनेवाले भोगों से जो विरक्त हो चुका है ।

इतिहासपुराणाभ्यां स्मृत्या च प्रतिबोधितः ॥

यतते परमं स्थानं यतनात् स यतिः स्मृतः ॥

याज्ञवल्क्यश्च-

अधीतवेदोजपकृत् पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् ।

शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनकुर्यात्तु नान्यथा ॥

केचित्तु-ब्रह्मचर्याद् वा गृहाद्वावनाद्वा यथाकामं पारिव्राज्यमित्याहुः । जाबालिश्च-ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृहीभवेत्, गृहीभूत्वा वनीभवेत्, वनीभूत्वा परिव्रजेत् । गृहाद्वा वनाद्वा इत्याह । यमस्त्वाह-

चीर्णवेदव्रतो विद्वान् ब्राह्मणो मोक्षमाश्रयेत् ।

निःस्पृहः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥

जातपुत्रो गृहस्थो वा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृतकृत्य परिव्रजेत् ॥

लिखितस्मृतौतु-

सोऽधीतवेदतत्त्वार्थो गृहवासमशक्नुवम् ।

प्रव्रजेदकृतोद्वाहो वनाच्चीर्णो गृहादपि ॥ इत्याह ॥

शङ्खस्मृतौत्वाह-

एवं नीत्वानवेकालं द्विजोब्रह्माश्रमीभवेत्

नानोपनिषदां ज्ञानात् प्राप्तवैराग्यपारवः ।

इतिहास और पुराण के द्वारा तथा स्मृति के द्वारा जो प्रतिबोधित है, वह सर्वोत्कृष्ट स्थान परमपद स्वरूप मोक्ष प्राप्ति के लिये यत्न करता है । अतः यत्न करने के कारण वह यति कहा जाता है । महर्षि याज्ञवल्क्य भी संन्यास के विषय में कहते हैं-जिसने वेदों का अध्ययन करलिया है, मन्त्रों का जप करने वाला पुत्रवान् अन्नदाता अग्नि उपासना करनेवाला और अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञ करनेवाला पुरुष मोक्ष में मन लगावे। अन्यथा संन्यासाश्रम में प्रवेश करने का यत्न नहीं करें । कुछ लोग तो कहते हैं ब्रह्मचर्याश्रम से अथवा गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से अपनी इच्छा के अनुसार संन्यास ग्रहण करना चाहिये । यहां याज्ञवल्क्य एवं अन्य के मत में अन्तर है कि याज्ञवल्क्य क्रमशः सभी आश्रमों को पार करने के वाद संन्यासाश्रम में प्रवेश

समाहृतेन्द्रिय ग्रामो विषयेभ्यः सुदूरतः ।
आत्मैकरामो मनसा निरस्य परिपन्थिनः ।
योगाभ्यासेन बहुशो लब्धात्माऽदृढबन्धनः ।
सर्वसङ्गनिवृत्तात्मा ब्रह्मचार्यपि सुव्रतः ।
एतैर्गुणैरुपेतश्चेत् गृहस्थो वा प्रजायते ।
कृत्वेष्टिं विधिवद्दत्वा सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य द्विजोब्रह्माश्रमी भवेत् । अत्र च मनुः-

की अनुमति देते हैं तथा अन्य किसी भी आश्रम से संन्यासाश्रम में जाने की अनुमति देते हैं। और इस विषय में जाबालि ऋषि कहते हैं-ब्रह्मचर्याश्रम को परिपूर्ण करके गृहस्थ बने। गृहस्थ बनकर वानप्रस्थाश्रमी बने वानप्रस्थाश्रमी होकर संन्यासाश्रमी बनें। अथवा गृहस्थाश्रमी से या वानप्रस्थाश्रम से संन्यासी बने। अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम से नहीं। यम स्मृतिकार तो कहते हैं-कि जो विद्वान् समस्त व्रतों की पूर्ण कर लिया है वह ब्राह्मण आकांक्षा रहित होकर समस्त प्राणियों में स्थावर और जङ्गम में निःस्पृह रहकर इन्द्रियों के ऊपर एवं अपनी आत्मा को वश करके संतान उत्पन्न हो जाने के वाद गृहस्थ भी मोक्ष हेतु संन्यासाश्रम का अवलम्बन करे। लिखित→अर्थ को समझ चुका है वह गृहस्थाश्रम में निवास करने में असमर्थ होता हुआ विना विवाह किये हुए ही ब्रह्मचर्याश्रम से संन्यासाश्रम में जप अथवा व्रत पूर्ण होने पर वानप्रस्थ या गृहस्थ्य से भी संन्यासाश्रम में प्रवेश कर सकता है। शङ्खस्मृति में तो कहा है इसप्रकार वानप्रस्थाश्रम में समय विताकर ब्राह्मण संन्यासाश्रमी बनें जो अनेक उपनिषदों के ज्ञान से वैराग्य में दक्षता को प्राप्तकर लिया है। सुदूर तक जानेवाले इन्द्रियों को विषयों से नियन्त्रितकर चुका है एकमात्र आत्मा में आनन्दानुभूति करनेवाला मन के द्वारा अपने काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि आन्तरिक शत्रुओं को दूर करके अनेक वार योगाभ्यास के द्वारा जिन्होंने आत्म साक्षात्कार कर लिया है। जिसका सांसारिक बन्धन ढीला हो चुका है। जिसकी आत्मा सभी तरह की आशक्तियों से दूर हो चुकी है। ब्रह्मचारी होते हुए भी समस्त गुणों से सम्पन्न है इसप्रकार के गुण समुदाय से मण्डित व्यक्ति यदि गृहस्थ भी प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है वह यज्ञ करके शास्त्रीय विधानानुसार दान देकर सभी वेदों की दक्षिणा सहित दान देकर स्वयं में अग्नि

ऋणानि त्रीण्यपाकृत मनोमोक्षे निवेशयेत् । श्रुतौ तु-यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेत् ब्रह्मचर्याद् वा गृहाद् वा वनाद्वा कामं परिव्रजेत् । कुत्रचिदुक्तमन्यत्र द्विजः परिव्रजेदित्युक्तम्, कुत्रचित्-अनाश्रमी न तिष्ठेत् । अन्यत्र आश्रमाणां सर्वेषां नियमानां परिपालनानन्तरं आत्मारामः सन् शब्दादिभ्यो विषयेभ्यो मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि निगृह्य परिपक्वकषायः सञ्जातवैराग्यो, योगाभ्यासबलेन प्राप्तात्मज्ञानः प्रारिव्राज्यं गृह्णीयादिति । विविधैः प्रकारैः स्वस्वमतान्युपस्तानि । सर्वेषां समन्वये कृतेऽपि द्विजस्यैव संन्यासेऽधिकार आयाति ते च ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या ब्रह्मचर्याद् वा गृहाद्वा वनाद्वा कथञ्चित् पारिव्राज्यमर्हन्ति, शूद्राणाञ्च वेदाध्ययनाधिकाराभावात् पारिव्राज्यमेभिर्वचोभिः कथञ्चिदपि न सिद्ध्यति । स्त्रीणान्तु का कथा । यतोहि मनुना निरूपितम्-वैवाहिकोविधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौवासः गृहार्थो अग्नि प्रक्रिया ॥ इति ॥

आरोपितकर ब्राह्मण संन्यासाश्रमी बनें । और इस विषय में मनु स्मृतिकार कहते हैं-देव, पितृ एवं ऋषि इन तीनों ऋणों को चुकाकर मनको मोक्ष में लगावे । वेद में तो कहा है-जिस दिन परम वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ग्रहण करे ब्रह्मचर्याश्रम से अथवा गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से अपनी इच्छानुसार परिव्रज्या ग्रहण करे। इत्यादि वेद एवं धर्म शास्त्र के वचनानुसार ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करें ऐसा कहीं पर कहा गया है । दूसरे स्थान पर द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य संन्यास ले कहीं पर तो विना आश्रम के नहीं रहना चाहिये । दूसरे जगह सभी आश्रमों के नियमों का क्रमशः परिपालन करलेने के पश्चात् आत्माराम बनकर शब्द आदि विषयों से मन के द्वारा सभी इन्द्रियों को निगृहीत करके वैराग्य को परिपक्व हो जाने पर विरक्त होकर योगाभ्यास के बल से आत्म ज्ञान को प्राप्त करलेने पर संन्यास ग्रहण करे ।

इसप्रकार विविध ढंग से आचार्यों के द्वारा अपने अपने विचार प्रस्तुत किये गये हैं । सभी विचारों का समन्वय करलेने पर भी ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य का ही संन्यास में अधिकार सिद्ध होता है । और वे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ब्रह्मचर्य गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ से जिस किसी आश्रम से संन्यास ग्रहण कर सकते हैं । और शूद्रों का वेद अध्ययन के अधिकार का अभाव होने के कारण संन्यासाश्रम में प्रवेश इन

शूद्राणामन्त्यजानाञ्चभिन्नैव स्थितिः, यतो हि तेषां वेदविहितः संस्कारः कदाचिदपि न भवति, ब्रह्मचर्याश्रमयज्ञोपवीतादीनाञ्च का कथा । अत साम्प्रतिके युगे तु भारते वर्षे यवनानां बौधजैनादीनां प्रभावबाहुल्ये जाते द्विजेष्वपि क्रमेण हीनता समायाता "निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयोनाऽन्यस्य कस्यचित्' इति नियमोऽपि द्विजानां कृतेऽपि व्याकुप्येत, द्विजानामपि साम्प्रतिके युगे वेदविधानमनुसृत्य समस्तसंस्कारविधानाभावात् । "युगोऽयं दारुणः कलिः" इति विचारमनुसृत्य कुत्रचित् ब्राह्मणस्यापि विवाहोपनयनसंस्कारौ एव विधीयते । कुत्रचित्त्रयः संस्काराः विधीयन्ते अन्यत्र चत्वारः । वेदाध्ययनस्तु कथैव नास्ति । म्लेच्छा अपि वेदान् पठन्ति ब्राह्मणाश्च न पठन्ति इति युगधर्म

पूर्व वर्णित वचनों से किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता है । स्त्रियों के संन्यास की तो वात ही क्या क्योंकि भगवान् मनु के द्वारा कहा गया है कि स्त्रियों का विवाह सम्बन्धि विधि विधान ही वैदिक संस्कार कहा गया है । पति की सेवा ही गुरुकुल में वास है । तथा घरका कार्य व्यवहार सम्पादन अग्निहोत्र है । शूद्र एवं चाण्डालों की तो अलग ही स्थिति है क्योंकि उनका वेद विहित संस्कार कभी भी नहीं होता है ब्रह्मचर्याश्रम एवं यज्ञोपवीत आदि की तो बात ही क्या । यवनों बौद्ध जैन आदि का अधिक प्रभाव हो जाने पर ब्राह्मणों में भी क्रमशः हीनता आ गयी । गर्भाधान से लेकर दाह संस्कार पर्यन्त जिसका विधान मन्त्रों के द्वारा कहा गया है उसी का इस वेदादि शास्त्र पढने में अधिकार है दूसरे का नहीं यह नियम भी ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिये भी विरुद्ध हो जायगा । ब्राह्मणों का भी वर्तमान युग में वैदिक विधान का अनुशरणकर समस्त संस्कार का विधान नहीं होने के कारण यह भयंकर कलियुग है इस विचार का अनुशरणकर कहीं पर ब्राह्मण का भी उपनयन और विवाह संस्कार ही वैदिक रीति-रिवाज के अनुसार किये जाते हैं । कहीं तीन संस्कार किये जाते हैं तो कहीं चार । वेदाध्ययन की तो वात हीं नहीं है । म्लेच्छ भी वेदों को पढते हैं। और ब्राह्मण नहीं पढते हैं । इसप्रकार युगधर्म को अच्छी तरह विचार करके श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में अवतार ग्रहण किये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी→ श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में प्रयाग में १३५६ विक्रम में अवतार लेकर गीता,

सम्यग्विचार्य श्रीरामानन्दाचार्यस्वरूपेणवतीर्णः भगवान् श्रीरामचन्द्रः श्रीरामानन्दाचार्यस्वरूपेण प्रयागेऽवतीर्यानन्दभाष्यं प्रस्थानत्रयमधिकृत्य विधाय श्रीवैष्णवमताब्जभास्करञ्च चकार, यतिप्रवरस्य श्रीरामानन्दाचार्यस्य वचनं भगवतः श्रीरामस्यैववचनमिति कृत्वा लोकोऽपि जग्राह । तत्र श्रीवैष्णवमताब्जभास्कराभिधाने ग्रन्थे श्रीमान् रामानन्दाचार्यो भगवतः प्रणति विषये प्रोवाच→

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः ।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै ॥

श्रीवै.म.भा. ४-५०-श्लो.

तेन केवलं ब्राह्मणादिका एव भगवत् प्रपत्तेरधिकारिणः इति न मनोरमम् । पुरषार्थत्वात् सर्वेषामेव ब्राह्मणादारभ्य स्त्रीशूद्रान्तानां सर्वस्मिन् काले स्थाने च प्रपत्तावधिकारः । न त्वस्मिन् यागादिवत् कुलबलशुद्धता प्रभृतीनां तत्रोपयोगः ।

उपनिषद एवं ब्रह्मसूत्र इन प्रस्थानत्रय पर आनन्दभाष्यों की रचना करके और श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर की रचना किये । यतिराज आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी का वचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ही वचन है ऐसा मानकर संसार ने भी उसे स्वीकार किया । उस श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर नामक ग्रन्थ में श्रीमान् श्रीरामानन्दाचार्यजी भगवान् की प्रपत्ति के विषय में सुस्पष्ट रूपसे कहे हैं कि-भगवत् शरणागति के सभी अधिकारी हैं । चाहे बलवान् हो या बलहीन । उच्च कूल में जन्म लिया हो या नीच कूल में क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं वे अपनी प्रपत्ति में कूल जाति अवस्था आदि का ध्यान नहीं रखते । इसिलिए जीव मात्र प्रपत्ति के अधिकारी हैं । इस कथन से केवल ब्राह्मण ही भगवत् प्रपत्ति के अधिकारी हैं यह कथन सुन्दर नहीं है । पुरुषार्थ होने के कारण ब्राह्मण से लेकर स्त्री, शूद्र पर्यन्त सभी सभी समय में और सभी स्थान पर प्रपत्ति के लिये अधिकृत हैं । न कि प्रपत्ति में याग आदि के समान कूल, बल, वंश आदि की विशुद्धता का उपयोग है । और कहा भी है पूर्व प्रतिपादित शरणागत के द्वारा वैष्णव श्रेष्ठ श्रीवैष्णवगण कर्मों के स्वरूपतः त्याग को अर्थात् कर्तव्य के अभिमान का त्याग पूर्वक समस्त फलों के त्याग को ही धर्म

तथा च-धर्मत्यागोऽपि परमैकान्तिकैरुच्यते वरैः ।
इत्थं हि कर्मणां त्यागः स्वरूपस्याखिलस्य च ॥ श्रीवै.भा.४/५१॥
अथोपायान्तराण्येव प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विरोधीति प्रपत्तेस्तु संबन्धज्ञानकोविदाः ॥
लोकसंग्रहणार्थन्तु श्रुतिचोदितकर्मणाम् ।
शेषभूतैरनुष्ठानं तत्कैङ्कर्य परायणैः ॥ श्रीवै.भा.४/५२/५३॥
भारद्वाजसंहितायामपि अयमेव अभिप्रायो निरूपितः । तद्यथा-
"ब्रह्म-क्षत्र-विशः शूद्राः स्त्रियश्चैवान्त्यजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन् सर्वधातारमच्युतम् ॥
बालमूकजडान्धश्च पङ्गवोवधिरास्तथा ।
सदाचार्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥"
पद्मपुराणस्य उत्तरखण्डेऽप्यभिहितम्-
"आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान् वैष्णवः शुचिः ।
गम्भीरश्चतुरोधीरः शिष्य इत्यभिधीयते ॥

त्याग कहते हैं। यह शास्त्रीय सिद्धान्त हैं और धर्म त्याग के वाद भगवान् के साथ चेतनों का शेष, शेषित्व आदि नौ प्रकार के सम्बन्ध को जाननेवाले श्रीवैष्णव प्रपत्ति परायण हैं। वे मोक्ष के कारण स्वरूप कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग रूप अन्य उपायों को प्रपत्ति स्वरूप मोक्ष का जो प्रधान साधन है उसे प्रपत्ति विरोधी मानते हैं। क्योंकि उनका अनुष्ठान किसी कामना से किया जाता है। श्रुति विहित नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान लोग संग्रह के लिये करते हैं। क्योंकि भगवान् के कैङ्कर्य में समर्पित भगवान् के शेषभूत भगवत् परायण भक्तों के द्वारा सामान्य लोक जो करते हैं उसका अनुवर्तन के लिये सम्पादन करते हैं। वर्णाश्रमोचित कर्म लोक कल्याण के लिए अवश्य ही करना चाहिये इसिलिए करते हैं ब्राह्मण से लेकर स्त्री शूद्र पर्यन्त मानवों का हर समय एवं सभी स्थानों पर प्रपत्ति का अधिकार है। इसमें कूलबल आदि की उपयोगिता नहीं है। भारद्वाज संहिता में भी यही अभिप्राय बताया गया है। वह जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ तथा अन्त्यज ये सभी प्रपत्ति ग्रहण करें। चराचर जगत् के भरण पोषण करनेवाले भगवान् श्रीरामजी की शरणागति

यस्त्वाचार्यपराधीनः तद्वाक्यशासने हृदि ।
शासनेस्थिरवृत्तिश्च शिष्यः सद्भिः उदाहृतः ॥"

अगस्त्यसंहितायामपि उक्तम्-

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोभजा ।
लोकाश्चाण्डालपर्यन्ता सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥

स्कन्दे चोक्तम्-

पतिव्रतामहासाध्वी मम भक्तिरता सदा ।

वृद्धहारीतस्मृतावप्युक्तम्-

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथापरे ।
तस्याधिकारिणः सर्वे सत्वशीलगुणायदि ॥

नारदीयपुराणेऽपि उक्तम्-

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठः विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।

श्रीमद्भागवतस्य महापुराणस्य सप्तमस्कन्धे निरूपितम्-

"विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचने हितार्थ प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ।७/९/१०।

परम आवश्यक है । बालक, मूक, जड, अन्धे, लङ्गडे तथा बहिरे ये सभी अच्छे आचार्य के द्वारा दीक्षित होने पर परमगति को प्राप्त करते हैं । सर्वाङ्ग सम्पन्न प्राणियों की तो वात ही क्या । पद्मपुराण के उत्तरकाण्ड में भी कहा है→आस्तिक धर्माचरणशील, सदाचारी पवित्र, वैष्णव, गम्भीर, चतुर एवं धीर पुरुष शिष्य कहा जाता है । और जो आचार्य के पराधीन है, आचार्य के वचन एवं उपदेश को मन में रखता है उनके शासन में स्थिर बुद्धि रखनेवाला है, ऐसे व्यक्ति को सज्जनों के द्वारा शिष्य शब्द से कहा गया है । अगस्त्य संहिता में भी कहा गया है→स्त्रियाँ पतिव्रताएं, प्रतिलोम एवं अनुलोम संकर जातियाँ, ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त इस श्रीवैष्णवी दीक्षा के अधिकारी हैं । स्कन्दपुराण में भी कहा है पतिव्रता महासाध्वी सदैव मेरी भक्ति में तत्पर हैं । बृद्धहारीत स्मृति में भी कहा है-ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियाँ तथा शूद्र वे सभी यदि सत्व गुण सम्पन्न आचार विचार वाले हैं तो उस प्रपत्ति के अधिकारी हैं । नारदीय पुराण में कहा है-श्रीवैष्णव भगवान् का भक्त यदि चाण्डाल भी है तो

एवमादीनि वचांसि प्रमापयन्ति स्त्रीशूद्रपङ्गवन्धवधिरादीनामपि प्रपत्तावधिकारः। भगवत् प्रपन्नानां च सर्वतोभावेन विशुद्धत्वात्, क्षीणदुष्कृतत्वाच्च सर्वेषामेव संन्यासाश्रमप्रवेशाधिकारो दीक्षाप्राप्तेरधिकारश्च सुतरां सिद्ध्यति। किन्तु समेषामेव संन्यासग्रहणात् पूर्वं प्रपत्तिं पञ्चसंस्कारश्च परमावश्यकः। गीतायां भगवता श्रीकृष्णेन-"काम्यानां कर्मणां न्यासः संन्यासं कवयो विदुः। काम्यकर्मपरित्यागस्य ज्ञानिनां स्वभावसिद्धत्वादित्युक्तम् ॥२६॥

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयोविद्या गजेन्द्रस्य का, का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्। कुब्जाया किमुनामरूपमधिकं किं तत् सु-

ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ है। भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्द में कहा गया है कि-द्वादश गुण सम्पन्न ब्राह्मण पद्मनाभ भगवान् श्रीविष्णु के चरणकमल से उदासीन हो तो उससे भगवत् चरणकमलानुरागी चाण्डाल भी अतिशय महान् है। मेरा यह मानना है कि अपना सबकुछ जिसने भगवान् को समर्पित करदिया है वह ब्राह्मण तो केवल अपना उद्धार करता है किन्तु भक्त चाण्डाल अपनी कूल परम्परा सहित सभी का उद्धार कर देता है। इत्यादि शास्त्रों के वचन इस वात को प्रमाणित करते हैं कि स्त्री, शूद्र, पङ्गु, अन्ध, बहिर, आदि भी भगवत् प्रपत्ति के अधिकारी हैं। भगवत् प्रपन्नों का सभी तरह से परम पवित्र होने के कारण तथा समस्त दुष्कृतों को क्षीण हो जाने के कारण निष्कल्मष होने से सभी का ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री आदि का संन्यासाश्रम प्रवेश एवं दीक्षा प्राप्ति का अधिकार अच्छी तरह सिद्ध होता है। किन्तु इन सभी को संन्यास ग्रहण से पहले श्रीराम शरणागति एवं पञ्चसंस्कार परम आवश्यक है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वारा काम्य कर्मों का परित्याग ही संन्यास है ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं कहा गया है और काम्य कर्मों का परित्याग ज्ञानि पुरुषों के लिए स्वभाव सिद्ध होने के कारण श्रीरामप्रपत्ति पूर्वक संन्यासाश्रम में प्रवेश के लिए भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी के मत में सभी को अधिकार है ॥२६॥

अजामिल का कौन सा वेदशास्त्र सम्मत पवित्र आचरण था, भक्त बालक ध्रुव की क्या अवस्था थी, गजराज का कौन सा वेदाध्ययन अथवा उपनिषद ज्ञान था, विदुर की कौन पवित्र जाति थी, परम वृद्ध उग्रसेन का क्या पुरुषार्थ बल था, कुब्जा की

दाम्नो धनम् भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो राघवः । एव मादिभिर्युक्तिभिर्भक्तिमार्गे केवलस्य कल्मषरहितस्य विशुद्धस्य मानसस्यैव प्रधानसाधनता प्रमुखैराचार्यवर्यैरभ्युपेता । अन्यथा प्रमुखस्याचार्यस्य पवनत नयस्य श्रीहनुमतः कथमाचार्यत्वं स्यात् । श्रीमद्वाल्मिकीयरामायणे उक्तम्-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥
पापानां वाऽशुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगम ।
कार्य्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥

श्रीगीतायामप्युक्तम्-

मां हि पार्थव्यपाश्रित्य येऽप्रिस्युः पापयोनयः ।
स्त्रियोवैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशु च ॥

कौन सी विलक्षण सुन्दरता थी, दरिद्र ब्राह्मण सुदामा के पास किस प्रकार का धन था, अर्थात् उपर्युक्त इन सभी के पास जाति गुण आचार अवस्था कुल बल ऐश्वर्य आदि गुणों की सभी तरह से कमी थी, फिर इन सभी के ऊपर भगवान् अहैतुकी परम अनुकम्पा किये। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् केवल श्रद्धा भक्ति से ही सन्तुष्ट होते हैं। निर्बल के बल राम हैं। भगवान् को प्रसंन्न करने के लिये गुणों की आवश्यकता नहीं। भगवान् श्रीराघवजी भक्ति प्रिय हैं। शास्त्र पुराणों में देखे गये इस तरह की युक्तियों से सिद्ध होता है कि भक्ति मार्ग में केवल पापों से रहित अत्यन्त पवित्र मानस होना ही प्रधान साधन है विशुद्ध मन की ही भगवत् कृपा में मुख्यकारणता है। ऐसा श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवसम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों के द्वारा अङ्गीकार किया गया है। ऐसा यदि नहीं होता तो श्रीसम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य श्रीपवन तनय श्रीहनुमानजी का आचार्यत्व कैसे होता। श्रीमद्वाल्मिकी रामायण में भी कहा गया है। भगवान् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी अपने श्रीमुख से कहते हैं कि एकवार ही जो शरणागत होकर हे नाथ ? मैं आपका हूँ ऐसी जो याचना करता है ऐसे-समस्त प्रपन्न प्राणी मात्र के लिये मैं सदैव सभी तरह का अभयदान देता हूँ। इसलिये मानस श्रीरामायण में कहा है-

अत्र विषये जगद्गुरुणा श्रीमता रामानन्दाचार्येण गीतायाः आनन्द भाष्ये सुस्पष्टमभिहितं यत् भगवदेकशरणस्य भगवदेकोपायस्य ब्रह्मसंस्थस्य आश्रमान्तरेभ्यः पृथक् कृत्याभिहितत्वात् । तस्मात् तत्तदाश्रमे अरुचिमतः परमविरक्तस्य परमपुरुषैकचिन्तकस्य तदेकशरणस्य ज्ञानिभक्तस्य सर्वाश्रम श्रेष्ठतया गीताशास्त्रे असकृदुच्चारणत्वात् परमात्मानुरक्तिरसिकः स एव विरक्ताश्रमोऽनुष्ठेयो मुमुक्षुभिः इति ।

आचार्येण श्रीहरिदासेन श्रीरामतापन्युपनिषदि प्रतिपादितं यत्-अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रतारकः तं ब्रह्मव्याचष्टे । इतिश्रुत्याजन्तुमात्र स्याधिकारित्वद्योतनात् ।पुनः य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते । अत्र ब्राह्मणशब्दो ब्रह्मबुभुत्स्वर्थकः न तु ब्राह्मण जाति परः ।

सनमुख होइ जीव मोहि जव ही । जन्म कोटि अघ नाशहुँ तव ही ॥

पाप पूर्ण आचरण करनेवालों, अशुभ आचरणशील का, हे श्रीहनुमानजी यहाँ तक की दुराचरणशीलता के कारण बध करने योग्य पुरुषों का भी शरणागत होने पर आर्य आचरणशील भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा करुणा किया जाना उनका परम कर्तव्य है। सभी उनके सन्मुख होने पर कोई अपराधी नहीं रहता है। सभी अपराधी भी भगवत् परम कृपा के पात्र हो जाते हैं। गीता में भी भगवान् अपने श्रीमुख से कहते हैं कि-हे पार्थ मुझे विशेष रूपसे अपना आश्रय बना लेने पर पाप योनियों में रहनेवाले भी जो प्राणी हैं, वे स्त्रियाँ वैश्य तथा शूद्र ये सभी परमगति को प्राप्त करते हैं। केवल भगवान् का शरणागत होने की देरी है।

संसार के सभी धर्मों का परित्यागकर एकमात्र मेरे शरण में आ जाओ, मैं अखिल जगत नियन्ता भगवान् विष्णु तुमको संसार के समस्त पाप कलाप से मुक्त कराऊँगा, तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। इन वातों से सिद्ध होता है कि संसार का सभी मानव भगवान् का शरणागत हो सकता है। शरणागत का भगवान् सर्वतोभावेन अवश्य उद्धार करते हैं।

इस विषय में जगद्गुरु श्रीमान् भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा गीता के आनन्दभाष्य में सुस्पष्ट रूपसे कहा गया है कि जिसका एकमात्र भगवान् शरण हैं। भगवान् ही एकमात्र साधन हैं। ऐसे ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के अन्य आश्रमों से भिन्न प्रकार

शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः ।
स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ॥
लोकाश्चाण्डालपर्यन्ता सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः ।
स्वजातिकर्मनिरता भक्ताः सर्वेश्वरस्य ये ॥

इत्यगस्त्यसंहितायां चाण्डासपर्यन्तस्य षडक्षराधिकारित्वोक्तेः ।

हारीतस्मृतावप्युक्तम्-

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथापरे ।
सर्वेऽप्यत्राधिकारिणो ह्यनन्य शरणा यदि ॥
गर्भजन्मजरामृत्युतारकं सर्वदेहिनाम् ।
स्वभक्तवत्सलं राममन्त्रं सम्यगुपास्महे ॥

भारद्वाजसंहितायामप्युक्तम्-

बालमूकजडान्धाश्च पंगवोवधिरास्तथा ।
सदाचार्य्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परांगतिम् ॥

ब्रह्मपुराणे श्रीमद्भगवतः वचनम्-

मद्भक्ताः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथान्त्यजाः ।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक् श्रद्धा समन्वितः ।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥

का ही कर्तव्य कहे जाने के कारण मुक्ति सम्भव होती है। इसिलिए उन-उन आश्रमों में जिसकी अभिरुचि नहीं है ऐसे परम विरक्त पुरुष के लिये जो कि एकमात्र परम पुरुषोत्तम भगवान् के चिन्तन करनेवाले हैं। भगवान् ही जिसका एकमात्र शरण हैं। उस ज्ञानी भक्त के सभी आश्रमों से श्रेष्ठ होने के कारण गीता शास्त्र अनेक वार उच्चारण से परमात्मा के परमानुराग का रसिक वही आश्रम मोक्ष की कामना करनेवाले पुरुषों के द्वारा पालनीय है।

आचार्य श्रीहरिदासजी के द्वारा श्रीरामतापनीय उपनिषद में प्रतिपादन किया गया है कि क्योंकि यहाँ पर प्राणों का उर्ध्व गमन होने पर भगवान् शंकर उस सकल लोक

इत्थं परमोदारस्य विलक्षणशक्तिसम्पन्नस्य क्षणार्धेन महापातकिनामपि समूलपापपुञ्जविनाशकस्य परममहतः श्रीवैष्णवधर्मस्य दीक्षायां समेषामेव मानवानामधिकारः अस्ति इति बोद्धव्यम् । श्रीसम्प्रदाये दीक्षितस्य पुम्सस्य श्रीवैष्णवसंन्यासाश्रमेऽधिकारः अस्ति इति तु पूर्वमपि निरूपितम् । आकीट पतङ्गस्य श्रीराममन्त्रग्रहणेऽधिकारः इति भगवता श्रीरामचन्द्रेण उक्तम् । भाष्यकृता श्रीरामानन्दाचार्येणापि समर्थितं यत् विरक्ताश्रमे-श्रीवैष्णवाश्रमे भगवच्छरणागतौ च वर्णाश्रमधर्मस्य सामान्यधर्मपरिपालनस्य च विशेषाग्रहो नास्ति । यतो हि अन्यधर्मापेक्षया श्रीवैष्णवधर्मानुपालने कोटिगुणाधिकं पुण्यं निरूपितम् । किन्तु एतावान् विशेषोऽस्ति यत् भगवच्छरणागतौ श्रीरामचन्द्रपादपद्मानुरागः आस्तिक्यं, शान्तचित्तता, श्रद्धा, भगवन्म हात्म्यवचनेषु हृदयेन अर्थवादत्वानङ्गीकारः भगवत् भागवतकीर्तिकथा श्रवणाचारणाद्यभिरूचिरेवमाद्योगुणा अपेक्षिताः सन्ति । तदुक्तम्-

प्रसिद्ध तारक ब्रह्म का व्याख्यान करते हैं। इस श्रुति के अनुसार प्राणि मात्र का भगवत् प्रपत्ति का अधिकारित्व प्रकाशन होता है ।

जो इस तारक ब्रह्म का नित्य अध्ययन करता है वह ब्राह्मण मुक्त होता है। यहाँ पर ब्राह्मण शब्द तत्वज्ञान का अभिलाषी अर्थ प्रतिपाद्य हैं। न कि ब्राह्मण शब्द ब्राह्मण जाति परक हैं।

जिनका पवित्रतम व्रत हैं ऐसे शुद्ध धर्मात्मा तथा द्विजाति के सेवक स्त्रियाँ पतिव्रताएं तथा अनुलोम और प्रतिलोम चाण्डाल पर्यन्त जो भी जाति हैं वे सभी इस परम विरलाश्रम के अधिकारी हैं । जो अपने जन्म कर्मानुसार जाति के धर्मका परिपालन करते हुए सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के भक्ति का अधिकारी हैं । इसप्रकार अगस्त्य संहिता में चाण्डाल पर्यन्त मानवों को षडक्षर श्रीराममन्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी होना कहा गया है । हारीत स्मृति में भी कहा गया है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ तथा अन्य जो भी जाति प्रजाति हैं वे सभी यदि अनन्य शरणागत हैं तो इस श्रीवैष्णव संन्यास के अधिकारी हैं । जो गर्भ, जन्म, बार्धक्य, मृत्यु इन सभी से सभी प्राणियों का उद्धार करनेवाले हैं ऐसे श्रीराममन्त्र की हम सभी सम्यक् उपासना करते हैं ।

स कथं ब्राह्मणो यश्च हरिभक्तिविवर्जितः ।

सकथं श्वपचो यस्य रामभक्तिर्हृदिस्थिता ॥

एतेन संन्यासे सर्वथा समेषां मनवानामधिकार इति स्वीकर्तव्यमेव भवति । किन्तु त्रिदण्डधारणे, नायं नियमः । शास्त्रवचनविरोधात् । प्राप्त संन्यासदीक्षैरपि श्त्रीसूद्रादिभिः त्रिदण्डः कदाचिन्न धारणीयः । अर्केचेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् । अभिमतफलावाप्तेः । सम्प्रदायाचार्याणां शास्त्राणाञ्च वचसां सर्वथा परिपालनमपि भवति । तदुक्तम् धर्मशास्त्र पुराणेतिहासपाञ्चरात्रादिषु । यथा हि, ब्राह्मणक्षत्रियविशां ब्रह्मचारिणां दण्डनियमोऽवलोक्यते, स्त्रीशूद्रादीनाञ्च दण्डनियमोनास्ति, तथैव स्त्रीशूद्रादीनां पारिव्रज्यायां सत्यामपि त्रिदण्डो न धारणीयो द्विज संन्यासिभिरेव धारणीयः नान्यैरिति विद्यते शास्त्राणां नियमः । तद्यथा- चतुर्धाभिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः । अत्रिः । अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं मुहुः । स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डीद्वारकामगादिति, श्रीभा. ।

भरद्वाज संहिता में भी कहा गया है, बालक, गुंगा, जड तथा अन्धा, लङ्गडा, बहिरा इन सभी लोगों को यदि आचार्य के द्वारा ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र का उपदेश दिया गया हो तो परमगति को प्राप्त करते हैं। ब्रह्मपुराण में भी श्री भगवान् विष्णु का वचन है क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियाँ, शूद्र और अनत्यज यदि मेरे भक्त हैं तो परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं। आप तो ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठ हैं। सम्यक् प्रकार की श्रद्धा से युक्त चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त है तो वह अपनी अभिमत सिद्धि को प्राप्त करता है। दूसरे की तो बात ही क्या।

इसप्रकार परम उदार अनेक विलक्षण शक्तियों से परिपूर्ण भगवान् का आधा क्षण भी उपासना करने पर महापातकियों का भी मूल सहित पापपुञ्ज का विनाश करनेवाला परम महान् श्रीवैष्णव धर्म की दीक्षा में सभी मनुष्यों का अधिकार है यह समझना चाहिये। जो पुरुष श्रीवैष्णवी दीक्षा से दीक्षित हैं उसका इस श्रीवैष्णव संन्यास में अधिकार है यह पूर्व में भी बताया जा चुका है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने श्रीमुख से कहा गया है कि आकीट पतङ्ग का शरणागति में अधिकार है। आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा समर्थन किया गया है कि

तदासाद्य दशग्रीवो क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥
क्ष्लक्ष्णः काषायसंवीतः शिखीछत्री उपानही ।
वामांशे चावसज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥ इति ॥
रावणस्तु यतिर्भूत्वा मुण्डः कुण्डी त्रिदण्डधृक् ॥ महाभारते ॥
कार्पासोद्भव काषायं वस्त्रं ग्राह्यमयाचितम् ।
नरक्तमुल्वणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ।
मलाक्तं च दशाहीनं वर्जयेदम्बरं यतिः ॥ जमदग्निस्मृतिः ।
त्रिदण्डरूपधृग् विप्रः साक्षान्नारायात्मकः ।
यस्तु पूजयते भक्त्या विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥ दत्तात्रेयस्मृतिः ।
त्रिदण्डं वैणवं लिङ्गं द्विजानां मुक्तिसाधनम् ।
निर्वाणं सर्वधर्माणामिति वेदानुशासनम् ॥

विरक्ताश्रम-श्रीवैष्णवाश्रम तथा भगवत् शरणागति में वर्णाश्रम धर्म और सामान्य धर्म के परिपालन की सामान्यतया विशेषता नहीं है। क्योंकि अन्य धर्मों की अपेक्षा श्रीवैष्णव धर्म के अनुपालना में करोडों गुणा अधिक पुण्य बताया गया है, किन्तु इसमें इतना अन्तर है कि भगवत् शरणागति में श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों में अनन्य प्रेम आस्तिकता शान्तचित्त होना श्रद्धा होना भगवान् के महात्म्य का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्र पुराणों के वचनों में हृदय से अर्थवाद (प्रशंसा परक वचन) नहीं मानना भागवत् और भगवान् के कीर्ति कथाओं को सुनने एवं आचरण में अभिरुचि आदि गुण अपेक्षित हैं। यही वात कही गयी है कि वह ब्राह्मण जो भगवान् की भक्ति से रहित है वह कैसे ब्राह्मण होगा ? वह चाण्डाल जिसके मानस पटल में अनन्य भगवद्भक्ति है वह चाण्डाल कैसे होगा ? अर्थात् भगवद्भक्ति से सभी पवित्र हो जाते हैं। और भक्ति के विना पवित्र भी अपवित्र हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीराम शरणागति सहकृत संन्यास में सभी मानवों का अधिकार है। इस सिद्धान्त को स्वीकार करना ही चाहिये।

लेकिन त्रिदण्ड धारण करने में यह नियम नहीं है। क्योंकि शास्त्रों के वचनों से विरोध किया गया है। जिनमें सत्वगुण की अधिकता है वे देवतागण भी काम,

द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च ।
चलं संन्यासिनां रूपमचलं ब्रह्मसंस्थितम् ॥
दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खः पण्डित एव वा ।
काषायमात्रवेषेण यतिः पूज्यो युधिष्ठिरः ॥ जमदग्निः ।
कार्पासं धारयेद् वस्त्रं पदवल्कलवर्जितम् ।
काषायमेव कार्पासं वासः कन्थाञ्च धारयेत् ॥ जाबालिः ।
द्विजस्य त्रिदण्डधारणविषये विशेषरूपेण दक्षस्मृतौ सविस्तरं न्यरूपयत् ।

क्रोध, लोभ, मोह आदि विषयों के द्वारा पराधीन करलिये गये तो अत्यन्त क्षुद्र स्वभाव वाले मानवों के इन कामादिकों से स्वाधीन करने की तो वात ही क्या । इसलिए जिसका कशाय (परम वैराग्य) परिपक्व हो चुका है उसी के द्वारा दण्ड धारण किया जाना चाहिये । अन्य पुरुष दण्ड धारण नहीं कर सकता है क्योंकि पूर्ण संस्कार के विना विषयों के द्वारा आकर्षित हो जाता है । त्रिदण्ड चिह्न को धारण करके उसके सहारे बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपना जीवन व्यवहार चलाते हैं, लेकिन जो ब्रह्मतत्व को नहीं जानता है वह त्रिदण्ड धारण करने के योग्य नहीं है । और आचार्य श्रीबौधायनजी भी कहते हैं कि संन्यास दीक्षा ग्रहण कर शास्त्रानुमोदित काषाय वस्त्र धारणकर लेने के पश्चात् पुनः श्वेत वस्त्र धारण नहीं करे । एक दण्ड अथवा त्रिदण्ड को धारण करे । एक दण्ड धारण करने के सम्बन्ध में मेधा तिथि कहते हैं-जव तक तीन दण्ड उपलब्ध न हो तब तक एक दण्ड धारणकर भी पर्यटन करे । द्विज संन्यासी को श्वेत वस्त्र धारण करने का निषेध धर्म शास्त्रों में देखा जाता है । इस नियम का अनुशीलन करने पर भी जिनकी संन्यास दीक्षा हो चुकी है ऐसे संन्यासियों के द्वारा काषाय वस्त्र का ही धारण करना समुचित है ।

इस विषय में मेधातिथि स्मृति कहती है-त्रिदण्ड कुण्डिका शिख्य भिक्षापात्र आसन और कौपीन आच्छादनार्थ ये छः संन्यासियों के परिग्रह हैं । रात में रास्ता चलना, यान आरोहण स्त्री विषय वार्ता और लोलुपता मञ्च आरोहण, तथा श्वेत वस्त्र धारण ये छः साधन संन्यासियों के अधः पतन के कारण कहे गये हैं । आसन पात्र लोप, सञ्चय शिष्य संग्रह, दिन में शयन और वकवास ये छः प्रकार के वस्तु यतियों के बन्धनकारी हैं, चातुर्मास्य को छोडकर पाँच दिन से अधिक नगर में संन्यासी का

सत्वोत्कटाः सुरास्तेऽपि विषयैस्तु वशीकृताः ।
किं पुनः क्षुद्रसत्वैस्तु मानवैरत्र का कथा ॥
तस्मात् पक्वकषायेण कर्तव्यं दण्डधारणम् ।
इतरस्तु न शक्नोति विषयैर्ह्रियते यतः ॥
त्रिदण्डलिङ्गमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।
यो हि ब्रह्म न जानाति त्रिदण्डार्हो न स स्मृतः ॥ दक्षः ॥

श्रीबौधायनश्चाह-न वा तदूर्ध्वं शुक्लाम्बरं विभृयाद् । एकदण्डं त्रिदण्डं वेति । अत्र मेधातिथिराह-यावन्नस्युः त्रयो दण्डाः तावदेकेन पर्यटेत् । द्विजस्य संन्यासिनः शुल्कवस्त्रधारणनिषेधो धर्मशास्त्रेष्ववलोक्यते, तदनु शीलनं विधायापि गृहीतसंन्यासदीक्षैः द्विजै संन्यासिभिः काषायवसनस्यैव धारणं विधेयम् । अत्र मेधातिथिः-

निवास आसन कहा जाता है। संन्यासोचितपात्रों का नहीं रखना पात्र लोप है, कालान्तर में उपभोग हेतु अन्नादि संग्रह द्रव्य संग्रह कहा जाता है। सेवा चाकरी सुख सुविधा आदि के लिये शिष्य जुटाना न कि उनका उद्धार करने के लिये उन्हे दीक्षित करना शिष्य संग्रह कहा जाता है। यह संन्यासी के लिये दोष जनक है। प्रकाश स्वरूप होने के कारण विद्या को दिन कहा जाता है तथा अविद्या को रात्री कहते हैं। विद्याभ्यास के विषय में कभी भी संन्यासी को प्रमाद नहीं करना चाहिये। विद्याभ्यास का आलस्य दिवा स्वाप कहा जाता है।

इन पूर्व वर्णित वचनों का यह सारभूत अर्थ है कि सभी ब्राह्मण से लेकर स्त्री शूद्र चाण्डाल पर्यन्त मानवों का भगवद् भक्ति में काम्य कर्मों का परित्याग पूर्वक परम वैराग्य स्वरूप संन्यास में अधिकार विद्यमान है। उसमें इतना अन्तर है कि स्त्री शूद्र आदि के द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने पर भी इन्हें त्रिदण्ड धारण नहीं करना चाहिये। संन्यास ग्रहण किये हुए द्विजों (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) के लिये तो नियम है कि संन्यास से पूर्व आश्रम पर्यन्त श्वेत वस्त्र ही धारण करने चाहिये। और त्रिदण्ड का ग्रहण नहीं करना चाहिये। संन्यास दीक्षा हो जाने के पश्चात् काषाय वस्त्र पहनना तथा त्रिदण्ड धारण करना अत्यावश्यक है। अपने पूर्वाचार्यों के शास्त्राविरुद्ध व्यवहानुरूप त्रिदण्ड का ग्रहण न भी करें तो भी श्रीवैष्णव संन्यासियों को काषाय

त्रिदण्डं कुण्डिकां शिक्यं भैक्षभाजनमासनम् ।
कौपीनाच्छादनं भिक्षा षडेतानि परिग्रहः ॥
रात्र्यध्वानं च यानं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च ।
मञ्चकं शुक्लवस्त्रञ्च यतीनां पतनानि षट् ।
आसनं पात्रलोपञ्च सञ्चयः शिष्यसंग्रहः ।
दिवा स्वापो पृथा जल्पो यते बन्धकराणि षट् ॥

चातुर्मास्यमतिरिच्य पञ्चदिनाधिकं नगरे वास आसनम् शुश्रुषाद्यर्थं नतु तदुद्धारार्थं शिष्यसंग्रहो दोषायेतिभावः ।

विद्या दिवा प्रकाशत्वादविद्यारात्रिरुच्यते ।
विद्याभ्यासे प्रमादोः यः स दिवा स्वाप उच्यते ॥

वस्त्र का धारण अवश्यमेव करना चाहिये । लेकिन यह व्यवहार श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सन्तों में व्यापक रूपसे नहीं देखा जाता है। प्राचीन आचार्य श्रीमान् श्रीवैष्मव सम्प्रदाय के सभी परमाचार्य काषाय वस्त्र धारण करनेवाले होते थे। और त्रिदण्डधारी होते थे । जगद्गुरु श्रीमान् श्रीभावानन्दाचार्यजी १३७६-१५३९ के समय तक यह क्रम चलता था लेकिन १५०३-१६११ जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्य जी के वाद काषाय वस्त्र एवं त्रिदण्ड धारण का परिस्थितिवश शास्त्राविरुद्ध होने से श्रीवैष्णव संन्यासी परित्याग कर दिये। क्योंकि उस समय की परिस्थिति बडी विचित्र थी कि श्रीवैष्णव संन्यासियों का एवं शङ्कराचार्यजी के सिद्धान्त के अनुयायी संन्यासियोंका हम श्रेष्ठ हैं तो हम श्रेष्ठ हैं इसके लिये बहुत वड़ा संघर्ष चलता था । उसमें सनातन वैदिक श्रीसम्प्रदाय धर्म रक्षा केन्द्रविन्दु में था तदर्थ समय समय पर नागा इस नाम से प्रख्यात श्रीवैष्णवीय साधु समुदाय के वर्ग विशेष का प्रयाग उज्जैन, हरिद्वार नासिक आदि में कुम्भ स्नान समारोह के अवसर पर प्रथम स्नान विषयक विवादों में संख्यातीत साधुओं का बध हो जाता था। जिस युद्ध के आज भी श्रीवैष्णवों के पास बहुत से प्रमाण उपलब्ध हैं। किन्तु अव यह लडाई झगडा का व्यवहार विलुप्त जैसा हो गया है अब उन पुण्य अवसर हेतु सरकार के ओर से ऐसी व्यवस्था हो चुकी है कि युद्ध का अवसर उपस्थित नहीं होता है। अतः हमारे आचार्य एवं दीक्षा शिक्षा गुरु स्वनाम धन्य श्रीमान् पश्चिमाम्नाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठा

एतेषां पूर्वोक्तवचनानामयं निर्गलितार्थोऽस्ति यत् सर्वेषामेव ब्राह्मणादारभ्य स्त्रीशूद्रचाण्डालान्तानां भगवद्भक्तौ काम्यकर्मपरित्यागपूर्वकपरमवैराग्यस्वरूपे संन्यासेऽधिकारो विद्यते। तत्र स्त्रीशूद्रादिभिः पारिव्रज्यायां गृहीतायामपि त्रिदण्डधारणं न विधेयम्। गृहीतगृहस्थदीक्षानां द्विजानां कृते तु संन्यासात् पूर्वावस्था पर्यन्तं श्वेतवस्त्रं धारणीयम् त्रिदण्डश्च न धारणीयः। संन्यासदीक्षायां गृहीतायां काषायं परिधानं त्रिदण्डश्चधारणीयः। परमयं व्यवहारः श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवसाधुषु व्याकपरूपेण नावलोक्यतेऽधुना शास्त्रविहितकर्मणि प्रमादाचरणात् खेदजनकमेतत्। प्राचीनाः श्रीमन्तः श्रीसम्प्रदायस्याचार्याः काषायवसनधारिणः त्रिदण्डिनश्चासन् जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यं (१३७६-१५३९) यावत् किन्तु जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यात् (१५०३-१६११) परं काषायवसनस्य त्रिदण्डस्य च धर्माविरुद्धत्वात् परिस्थितिवशात् परित्यागं श्रीवैष्णवसंन्यासिनोऽकुर्वन्। यतो हि तदानीं श्रीवैष्णवानां शाङ्करमतानुयायिनाञ्च महान् संघर्षः प्रचलतिस्म। समये समये नागा इति नाम्ना ख्यातानां साधूनां वधो भवतिस्म, यस्याधुनापि बहुनि प्रमाणानि सन्ति, क्रमेणायं व्यवहारोविलुप्तप्रायोऽभवत्। पुनरस्मदाचार्याणां श्रीगुरुचरणानां स्वनामधन्यानां श्रीमतां पश्चिमाम्नाय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीशानां श्रीशेषमठाधीशानां जगधीश श्रीशेषमठाधीश जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज ने २०२९ समय से त्रिदण्डग्रहण प्रथा को पुनः प्रारम्भकर दिया है इस शास्त्रीय विधान के अनुसार समारब्ध विधान का ही अनुसरणकर मैंने श्रीरामानन्दाब्द ६९० वसन्त पञ्चमी विक्रमसम्वत् २०४६ दिनाङ्क ३१।१।१९९० बुधवार को श्रीसम्प्रदायीय विधानानुसार समाज के नेतागणों के समक्ष त्रिदण्ड धारण किया। यहाँ यह ध्यान देने योग्य वात है कि जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी (१३७६-१५३९) के वाद विक्रमसम्वत् २०२९ में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र ने यथा नियम-यथा विधि त्रिदण्ड धारणकर श्रीसम्प्रदायीय प्रथा को पुनरुज्जीवित किथा जिसका अनुसरण यथा कथञ्चित् अन्यों ने किया। इसलिये श्रीवैष्णव संन्यासियों के परम ज्ञानी श्रीमान् आचार्य श्री का अनुशरण अवश्य ही करना चाहिये। एवं सभी को श्रीसम्प्रदायीय

द्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याणां श्रीरामप्रपन्नाचार्याणां समये यथाविधि विक्रमसम्वत् २०२९तः प्रारब्धः । तदनु मया यथाशास्त्रं श्रीसम्प्रदायीय विधानमनतिक्रम्य श्रीरामानन्दाब्दे ६९० श्रीवैक्रमाब्दे २०४६ वसन्तपञ्चमी बुधवासरे समाजनेतृगणसन्निधौ संगृहीतस्त्रिदण्ड इति जानन्त्येव सर्वे। साम्प्रतिके समये नास्ति सङ्घर्षः, तस्मात् श्रीसम्प्रदायीयैर्वैष्णवैरेतेषामनु शरणमवश्यं विधेयमिति शम् ॥२७॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीनस्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां संन्यासदीक्षाधिकार त्रिदण्डधारणाधिकारात्मकश्च प्रकरणः परिपूर्णः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

पञ्चसंस्कारपूर्वकंगृहीतदीक्षानां विरक्तश्रीवैष्णवानां विवाहादिनिषेधः

उन्नतं पदमवाप्य यो लघुः हेलयैव सपतेदिति ब्रुवन् ।
शैलशेखरगतोरजः कणः मन्दमारुतच्युतः पतत्यधः ॥१॥

यथा हि लोके सामान्या स्थितिरवलोक्यते, बाल्यावस्थानन्तरं किशा-

श्रीवैष्णवागम समर्थित काषाय वस्त्र धारणकर अतीत का खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करलेना चाहिये ॥२७॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यास मीमांसा नामक ग्रन्थ में संन्यास दीक्षा अधिकार एवं त्रिदण्ड धारण अधिकारात्मक यह प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

विरक्त श्रीवैष्णव विवाह निषेध

पञ्चसंस्कार पूर्वक दीक्षा प्राप्त किये हुए विरक्त श्रीवैष्णव साधुओं के विवाहादि का निषेध-

यह प्रसिद्ध नीति वचन है कि जो व्यक्ति ऊँचा पदको प्राप्त करके हीन आचरण आदि से युक्त होने के कारण लघुता को धारण करता है वह अनायास ही उच्च पद से पतित हो जाता है । यह बात कहता हुआ पर्वत शिखर पर पहूँचा हुआ धूलका कण मन्द पवन की झोका को प्राप्त करते ही नीचे गिर जाता है ।

रोवस्था ततो युवावस्था ततः प्रौढावस्था तदनन्तरं क्रमेण बार्धक्यं समा याति। एवमेव आश्रमाणामपि स्थितिरस्ति ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थ संन्यासाश्रमाः क्रमेण विद्वद्भिरवलम्ब्यन्ते, क्वचिदूर्ध्वरेतसां समुत्कटे वैराग्ये जाते ब्रह्मचर्याद् गार्हस्थ्याद् वनाद् वा यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेदिति श्रुतिनियमात् संन्यासाश्रमे प्रवेशो भवति। एतेषामाश्रमाणां प्रतिनियमः

क्योंकि जिसप्रकार संसार में सामान्य स्थिति देखी जाती है कि बाल्यावस्था के वाद किशोरावस्था होती है तत्पश्चात् युवावस्था इसके वाद प्रौढावस्था के वाद क्रमशः वृद्धावस्था आ जाती है। उसी प्रकार आश्रमों की भी स्थिति है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं। ये चारों ही आश्रम क्रम पूर्वक विद्वान् लोगों के द्वारा अवलम्बित होते हैं। कहीं-कहीं ऊध्वरिता लोगों के द्वारा अत्यन्त उत्कट वैराग्य उत्पन्न होनेपर ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य अथवा वानप्रस्थ से जिस दिन वैराग्य हो गया उसी दिन परिव्रज्यावृत्ति को धारण करे इस श्रुति नियम के अनुसार ब्रह्मचर्य आदि आश्रम से भी जहाँ कहीं से संन्यासाश्रम में प्रवेश विद्वान् एवं शास्त्रों से सम्मत है। लेकिन इन आश्रमों का प्रति नियम कहीं भी लोक व्यवहार अथवा शास्त्र में नहीं देखा जाता है कि संन्यास से वानप्रस्थ में आये वानप्रस्थ से गृहस्थ एवं गृहस्थ से ब्रह्मचर्य में। अर्थात् आश्रमों से विरुद्ध प्रत्यावर्त्तन वेद एवं शास्त्र दोनों से ही निषिद्ध है। शास्त्रों के द्वारा उन्नत आश्रमों में आश्रम क्रम का उल्लंघन करके भी जाने की अनुमति दी जाती है किन्तु उन्नत आश्रमों से नीचे की ओर लौटकर आने के लिये अनुमति नहीं दी जाती है। इसतरह के बहुत अधिक संख्या में प्राचीन काल से लेकर साधु हुये हैं एवं आजकल भी हैं तथा भविष्यत्काल में भी होंगे जो उत्कट वैराग्य नहीं होने पर भी पञ्चसंस्कार पूर्वक विरक्त साधु दीक्षा को प्राप्त करके भी उन संन्यास आश्रमों में निवास करते हुये भी भोग की इच्छा की प्रबलता के कारण पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। अविवाहिता, विवाहिता, अथवा विधवा स्त्री को समाज एवं शास्त्र का अनुशासन होने पर भी सभी के विरोध के वावजूद नियम को ताक में रखकर जिस किसी प्रकार विवाह करके गृहस्थी जीवन के सुख को भोगते हुये इस संसार में पापों के समूह को उत्पन्न करते हैं इन दोषों का शमन करने के लिये विरक्त दीक्षा से पूर्व ही आचार्य एवं शिष्य दीक्षा का सम्यक् प्रकार से निर्वाह करने की योग्यता का विवेचन करके ही विरक्ताश्रम को ग्रहण करें तथा आचार्य विरक्ताश्रम

कुत्रचिदपि वेदसम्मते शास्त्रेनावलोक्यते । शास्त्रैः उन्नतेषु आश्रमेषु गमनायानुमतिः प्रदीयते किन्तु उन्नतेभ्य आश्रमेभ्योऽधः प्रत्यावर्तनाय नानु मन्यते । एवं विधा अनेके साधवः पुरा बभूवुः, सम्प्रत्यपि सन्ति भविष्यत् कालेऽपि भविष्यन्ति, ये समुत्कटवैराग्याभावेऽपि विरक्तदीक्षां पञ्चसंस्कार पुरस्सरं समुपलभ्यापि तत्राश्रमेवसन्तोऽपि भोगैषणायाः प्रावल्यात् पुनः गृहस्थाश्रमे प्रविसन्ति, अनूढां विवाहितां विधवां वा यथाकथञ्चित् सत्यपि समाजस्य शास्त्रस्य विरोधे परिणीय, गार्हस्थ्यसुखमनुभवन्तः संसारेप्रत्यवाय समवायंजनयन्ति । तदुपशमनाय, विरक्तदीक्षोपलब्धेः पूर्वमेवाचार्यः शिष्यश्च की दीक्षा प्रदान करें। इस विषय में धर्म शास्त्रों में ये इसप्रकार के आचरण करनेवाले को पतित कहे गये हैं। इसलिये इन दोषों का शास्त्र के अनुसार निरूपण किया जाता है।

विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी का कर्तव्य है कि एक रात्रि पर्यन्त गाँव में परिभ्रमण करे अथवा चातुर्मास्यादि किसी परिस्थिति विशेष के कारण दीर्घकाल तक भी रहे किन्तु अन्धा, जड़, बहिरा, उन्मत्त, तथा गूँगा के समान ग्राम में निवास करे। अच्छा श्रीवैष्णव संन्यासी अपनी अवस्था, अपना आचार-विचार, व्रताचरण तथा शील सदाचार आदि गाँव नाम एवं गोत्र शाखा आदि देश वंश एवं शास्त्र ज्ञान कुल खानदान आदि का लोक में प्रचार नहीं करे।

यदि श्रीवैष्णव संन्यासी प्रचार करता है तो अपने कुलशील आदि के प्रचार करने से श्रीवैष्णव संन्यासी के सञ्चित पुण्य की हानी होती है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं। अपने अत्यन्त रहस्यपूर्ण धर्म पर अवलम्बित अज्ञात आचार-विचार वाला रहता हुआ विद्वान् संन्यासी परमज्ञानी होते हुये भी श्रीवैष्णव संन्यास धर्म को दूषित नहीं करता हुआ अपना धर्माचरण करे। इसप्रकार श्रीवैष्णव संन्यासियों के स्थिति के विषय में प्रतिपादन करते हुये स्मृतिकार अत्रि कहे हैं।

किसी अन्य विद्वान् का भी कथन है कि व्याकरण मीमांसा आदि पदवाक्य शास्त्र में तत्पर रहनेवाला पुरुष का भी मोक्ष नहीं होता है तथा जनसमुदाय के मानस को आकर्षित करनेवाला पुरुष का भी मोक्ष नहीं होता है भोजन, आच्छादन आदि कार्यकलाप में तत्पर रहनेवाला पुरुष का एवं रमणीय आकर्षक आवास-निवास में अभिरत पुरुष का मोक्ष नहीं होता है। अध्यात्म विद्या में पूर्ण समर्पित मानस वाला

दीक्षायाः सम्यङ्निर्बहणयोग्यतां विविच्य एव गृह्णीयुः दद्युश्चेति । अत्र विषये धर्मशास्त्रेषु एते एवमाचरणकारिणः पतिता समाख्याताः तस्मात् तद्दोषाणां यथाशास्त्रं निरूपणं क्रियते→

ग्रामैकरात्रं विहरेत् दीर्घमासीत वा क्वचित् ।
अन्धवज्जडवच्चापि बधिरोन्मत्तमूकवत् ॥
वयोवृत्तं व्रतं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ।
नामगोत्रादिचरणं देशं वंशं श्रुतं कुलम् ॥
प्रख्यापनाद् यतेर्हानिः पुण्यस्य स्यान्नसंशयः ।
गूढधर्माश्रितो विद्वान् अज्ञातचरितेस्थितः ॥

अमूढो मूढरूपेण चरेद्धर्ममदूषयन् ॥ इति अत्रिः यतीनां स्थितिविषये एवमाह ।

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न लोकचित्तग्रहणेरतस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥१॥

पुरुष यदि अहिंसक एकान्त स्थान पर निवास करने का प्रेमी सदाचारी एवं अपने व्रत में दृढ रहनेवाला आँख, कान, मुँह, जिह्वा आदि इन्द्रियों को अपने विषय से खींचकर परमात्मा में लगाने वाला महापुरुष का ही मोक्ष होता है। इसलिये श्रीवैष्णव संन्यासी को चाहिये कि अपने अभिमत मार्ग से अन्य विषय का अध्ययन नहीं करे लोक रञ्जन की कामना से व्याख्यान नहीं करे न ही मनोरंजक बातें सुने । किसी तरह पूर्व वर्णित गुणों से परिपूर्ण यदि श्रीवैष्णव संन्यासी हैं तो वह वास्तविक में श्रीवैष्णव संन्यासी हैं अन्यथा नहीं। जो पुरुष किसी भी कारण से श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा को प्राप्त करके अपने संन्यासाश्रमोचित धर्म में सुस्थिर नहीं रहता है उसे वहाँ का राजा चाण्डाल के नाम से उसे चिह्नित कर दे तथा अपने राज्य से उस दुराचारी व्यक्ति को निर्वासित कर दे ।

लाभ के निमित्त अथवा लोक सम्मान की कामना से श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष यदि व्याख्यान करते हैं अथवा धन कमाने के लिये शिष्यों का संग्रह करते हैं तो इसप्रकार के तथा अन्य प्रकार से भी निन्दित तपस्वियों का विभिन्न प्रकार का प्रपञ्च पूर्ण आचरण होता है। ध्यान शौच (पवित्राचरण) भिक्षा, और सदैव एकान्त स्थान पर निवास करने की आदत ये सभी भिक्षु के अनुरूप चार प्रकार के कर्त्तव्य हैं।

अध्यात्मविद्यारतमानसस्य मोक्षो ध्रुवो नित्यमहिंसकस्य ।
एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य पञ्चेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥२॥
नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथञ्चन ।
एतैः पूर्वं सुनिष्पनो यतिर्भवति नान्यथा ॥
पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ।
श्वपचेनाङ्कयित्वा तु राजा राज्यात् प्रवासयेत् ॥
लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ।
एते चान्ये च बहवः प्रपञ्चाः कुतपस्विनाम् ॥

श्रीवैष्णव संन्यासी का कोई पाँचवाँ कर्त्तव्य नहीं है। इसप्रकार श्रीसम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्रीवशिष्ठ मुनि का अभिप्राय है।

इस विषय में शातातप स्मृति में भी विस्तार पूर्वक कहा गया है कि जो व्यक्ति नैष्ठिक श्रीवैष्णव संन्यास धर्म में आरूढ हो चुका है वह यदि अपने धर्म से पतित होता है तो उसका प्रायश्चित्त संसार में कहीं नहीं देखता हूँ जिससे वह स्वयं की हत्या करने वाला ब्राह्मण श्रीवैष्णव संन्यासी विशुद्ध हो सके।

जो व्यक्ति विरक्त संन्यास दीक्षा को ग्रहण करके पुनः गृहस्थ धर्म को स्वीकार करता है वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा में कृमि बनकर निवास करता है। और वह अपने झूठ मूठ वचन के कारण जला हुआ वह पुरुष अन्धतामिस्त्र नामक नरक में डुब जाता है तथा भयंकर शून्य भवन में भयावह चूहा बनकर निवास करता है। और वह जल्दी ही गर्भ में निवासकर बारह जन्मों तक कुत्ता बनता है तथा बीस वर्षों तक भास पक्षी बनकर रहता है। नौ वर्षों तक शूकर रहता है तथा इसके वाद विना फूल फलवाला काँटों के समूह से ढका हुआ वृक्ष में जन्म लेता है। वृक्ष जाति में जन्म लेकर भी वह दावाग्नि से जलकर जंगल में स्थाणु (अधकटा वृक्ष) बन जाता है। तत्पश्चात् एक सौ बारह वर्ष पर्यन्त अचेतन स्थिति में रहता है और इसके पश्चात् १००० वर्ष पर्यन्त ब्रह्म राक्षस होता है।

भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर खून पानेवाला राक्षस योनि को क्रमशः प्राप्त करता है एवं पूर्ण रूपसे अपने वंश का संहार करने के पश्चात् इस योनि से मोक्ष को प्राप्त करता है। जो श्रीवैष्णव संन्यास धर्म को गिरानेवाला हो तथा श्रीवैष्णव

ध्यानं शौचं तथा भिक्षानित्यमेकान्तशीलता ।
भिक्षोश्चत्वारिकर्मणि पञ्चमं नोपपद्यते ॥

इति श्रीसम्प्रदायाचार्यप्रवरस्य वशिष्ठस्याभिमतम् ॥

अस्मिन् विषये शातातपस्मृतौ विस्तरेणाह →

आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ।
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत् स आत्महा ॥
पारिव्राज्यं गृहात्वा तु यो गृहस्थोभवेन्नरः ।
षष्ठिवर्षसहस्त्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
मिथ्यावचनदग्धोऽसौ सोन्धेतमसिमज्जति ।
शून्यागारेषु घोरेषु भवत्यारवु सुदारुणः ॥
सोऽचिराज्जायते गर्भे श्वा स्याद् द्वादश जन्मसु ।
भासो विंशतिवर्षाणि नव वर्षाणि शूकरः ॥

संन्यास में पतित व्यक्ति को दीक्षित करनेवाला हो एवं श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा प्राप्त करने में विघ्न पैदा करनेवाला हो ये तीनों ही प्रकार के व्यक्ति पतित कहे गये हैं। विन्दुला नामके संन्यास के स्वरूप में निवास करनेवाले चाण्डालों का गण है उनके वंशों में वे पतित श्रीवैष्णव संन्यासी सन्तान बनकर उन चाण्डालों के साथ निवास करे।

इस विषय में हारीत स्मृति में भी कहा गया है जो शास्त्रीय नियमानुसार बुद्धि पूर्वक श्रीवैष्णव संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् पुनः गृहस्थाश्रमी हो जाता है वही वेद शास्त्र के सभी धर्मों से बहिष्कृत आरूढ पतित कहा जाता है। आरूढ पतित शब्द का शाब्दिक अर्थ है कि उच्चतम आश्रम में प्रवेश करके पुनः निम्नतम आश्रम में प्रवेश करना। आरूढ पतित व्यक्ति अपने दश पूर्वजों एवं दश परवर्ती पुरुषों को नष्ट-भ्रष्ट करदेता है उन्हीं बीस पुरुषों का वह श्रीवैष्णव ब्राह्मण उद्धार करेगा यदि अपनी समता धर्म में व्यवस्थित है। इसलिये सभी तरह के प्रयत्नों के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी त्रिदण्ड को धारण करे। श्रीवैष्णव संन्यास धर्म का विधिवत् पालन करने के कारण वह व्यक्ति इस संसार में पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता है। संसार के सभी आश्रमों में तो त्रिदण्डधारी श्रीवैष्णव संन्यासी सर्वोत्तम आश्रमी है। वही व्यक्ति सन्मार्ग का अवलम्बन करनेवाले पुरुषों के द्वारा प्रणाम करने योग्य होगा।

अपुष्पो विफलोवृक्षो जायते कण्टकावृतः ।
ततो दावाग्निना दग्धः स्थाणुर्भवति कानने ॥
ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ।
पूर्णवर्षसहस्त्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः ॥
क्षुत्पिवासा परिश्रान्तः क्रव्यादोरुधिराशनः ।
क्रमेण लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन च ॥
न्यासं सम्पातयेद् यस्तु पतितः सन्यसेच्चयः ।
सन्यासविघ्नकर्ता च त्रयस्ते पतिताः स्मृताः ॥
विन्दुला नाम चाण्डाला परिव्राजकरूपिणः ।
तेषां जातान्यपत्यानि चाण्डालैः सहवासयेत् ॥
विषयेऽस्मिन् हारीतस्मृतावप्युक्तम्→
विधिना बुद्धिपूर्वेण यः संन्यस्य गृहीभवेत् ।
स एवारूढ़पतितः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥

त्रिदण्ड स्वरूप को धारण करनेवाला श्रीवैष्णव ब्राह्मण साक्षात् नारायण स्वरूप वाला ही है । जो व्यक्ति उस त्रिदण्डधारी व्यक्ति की पूजा करता है उसने साक्षात् भगवान् की भक्ति पूर्वक पूजा किया ऐसा माना गया है । ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र के द्वारा सदैव नारायण स्वरूप से विष्णु की भावना से विष्णु स्वरूपधारी वह त्रिदण्डी श्रीवैष्णव संन्यासी प्रणाम करने योग्य है । पराशरजी भी कहे हैं वे दोनों ही पुरुष निश्चित रूपसे सूर्य मण्डल का भेदनकर मुक्तिधाम में पहुँचते हैं जो योग युक्त श्रीवैष्णव संन्यासी हैं तथा सामने-सामने युद्ध करता हुआ युद्धभूमि में मारा गया है । श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा को ग्रहण किये हुये द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को देखकर भगवान् दिवाकर अपने स्थान से विचलित हो जाते हैं कि यह पुरुष मेरा मण्डल का भेदनकर परब्रह्म को प्राप्त करेगा ।

कात्यायन स्मृतिकार भी कहते हैं कि काम क्रोध आदि दोषों को श्रीवैष्णव संन्यासाश्रमी पुरुष यावज्जीवन परित्याग करे । इसप्रकार व्यवहार करता हुआ वह श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष सदैव ब्रह्म को प्राप्त करता है । शुक्रस्मृति में भी कहा गया है कि आसक्ति से रहित पुरुष क्रोध पर विजय प्राप्त करनेवाला, हल्का भोजन

आरूढपतितो हन्याद् दशपूर्वान् दशापरान् ।
तान्नेव तारयेद्विप्रो यदि साम्ये व्यवस्थितः ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्रिदण्डं धारयेद् यतिः ।
नेह भूयः स जायते यतिधर्मस्य पालनात् ।
सर्वेषां ह्याश्रमाणां तु त्रिदण्डी ह्युत्तमाश्रमी ॥
स एवैभिर्नमस्यः स्यात् भक्त्या सन्मार्गवर्तिभिः ।
त्रिदण्डरूपधृग् विप्रः साक्षान्नारायणात्मकः ।
यस्तं पूजयते भक्त्या विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥

करनेवाला, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेवाला पुरुष अपने बुद्धि के दरवाजों को बन्दकर मन को परमात्मा के ध्यान में लगावे । और दत्तात्रेय स्मृतिकार भी कहते है कि संन्यासोचित चिह्न बाँस के दण्ड को धारण करके जो अविवेक पूर्ण बुद्धिवाला पुरुष उस त्रिदण्ड का परित्याग करता है वह घोर नरक में जाता है जो अतिशय तीव्र संकटों के कारण अत्यन्त भयंकर है । स्मृतिकार देवल भी कहते हैं कि जिस पुरुष के लिये शत्रु और मित्र दोनों ही समान हैं तथा किसी प्रकार का परिग्रह नहीं है ब्रह्मचारी है एवं मङ्गल जनक व्यवहार में प्राणियों को शिक्षा देता है रत्न, धन, धान्य, कामादि, विषयों का उपभोग आदि के सम्पर्कों में नहीं रहता है तथा अहंकार, माया, मोह, हर्ष, विरोध, विस्मय, विवाद, उद्वेग तथा तर्जना आदि को छोडकर अपने श्रीवैष्णव संन्यास धर्म में सुस्थिर रहे यही यतिधर्म है । और यह विषय श्रीवशिष्ठ संहिता में ब्राह्मण धर्म निरूपण में विस्तार पूर्वक कहा गया है कि षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममन्त्र और तपस्या के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के उपासना में तत्पर काषाय वस्त्र को धारण करनेवाले त्रिदण्ड सहित श्रीवैष्णव संन्यासाश्रमी काष्ठ विर्मित कमण्डलु आदि पात्रों से सुशोभित श्रीसीतारामजी का स्मरण करनेवाले तथा पुण्यजनक तीर्थों में विचरण करनेवाले दम्भ और पाखण्ड आदि से विमुक्त श्रीवैष्णव संन्यासी लोग होते हैं ।

किन्तु यदि कोई विधिवत् श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा को ग्रहण करने के पश्चात् पुनः गृहस्थ धर्म में प्रवेश करलेते हैं तो उनका आरूढ पतन हो जाता है । इस संसार में आरूढ पतन का किसी भी प्रकार का प्रायश्चित्त तथा उद्धार का उपाय सम्भव नहीं है । इस संसार में जो अपने अधिकार से भ्रष्ट हो गया है लोक निन्दित है एवं आदर सम्मान से रहित है इस स्थिति में संसार में जीवित रहता है और मरजाने के पश्चात्

षडक्षरेण मन्त्रेण नित्यं नारायणात्मना ।
नमस्यो विष्णुभावेन विष्णुरूपीत्रिदण्डधृक् ॥

पाराशरश्चाह-

द्वाविमौ पुरुषावेतौ भित्वा वै सूर्यमण्डलम् ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखोहतः ॥
संन्यस्तं हि द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
एष मे मण्डलं भित्वा परंब्रह्माधिगच्छति ॥

कात्यायनश्चाह-

कामक्रोधादिकान् दोषान्वर्जयेद् यावदायुषम् ।
एवं संवर्तयन् नित्यं ब्रह्मसम्पद्यते यतिः ॥

उशनाचाह-

मुक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्धिद्वाराणि मनोध्याने निवेशयेत् ।

दत्तात्रेयश्चाह-

आदाय वैष्णवं लिङ्गं यस्तु त्यजति मूढधीः ।
स याति नरकं घोरं तीव्रसङ्कटदारुणम् ॥

आरूढ पतित श्रीवैष्णव संन्यासी महान् घोर नरक में जाता है ।

गृहस्थाश्रम से अतिरिक्त तीनों ही आश्रमों में ब्रह्मचर्य व्रत का सदैव परिपालन करना चाहिये । ब्रह्मचर्य व्रत परिपालन के अभाव में उस श्रीवैष्णव संन्यासी का संन्यासाश्रम के परम उन्नत स्थान से आरूढ पतन हो जाता है । और आरूढ पतित व्यक्ति समस्त आश्रम धर्मों से बहिष्कृत हो जाता है उसको किसी भी आश्रम धर्म के पालन का अधिकार नहीं है एवं धर्मात्मा पुरुषों के द्वारा तथा राजाओं के द्वारा इसप्रकार के आरूढ पतित व्यक्तियों को अपने अधिकार से बहिष्कृत करदिया जाना चाहिये ।

श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने इन उपरोक्त विषयों को अपने श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर ग्रन्थ में निम्नरूप से व्यक्त किया है→मनु आदि समस्त स्मृति शास्त्रों में निषेध किया गया है, अतः कभी एवं किसी भी अवस्था में श्रीवैष्णवीय विरक्त दीक्षा से दिक्षीत श्रीवैष्णव संन्यासी स्त्री का ग्रहण न करें अर्थात् विवाह न

देवलश्चाह-तुल्यारिमित्रो निष्परिग्रहो ब्रह्मचारी माङ्गल्यव्यवहारे जीवशिक्षा रत्नधनधान्यविषयोपभोगसम्पर्केषु दर्पमायामोहहर्षविरोधविस्मय विवादत्रासतर्जनादिवर्जनमिति धतिधर्मः ।

उत्कञ्चाश्रमधर्मनिरूपणे श्रीवशिष्ठसंहितायाम् →

रामसन्त्रतपोभ्याञ्च रामाराधनतत्पराः ।
सहदण्डत्रयेणान्त्या काषायम्बरधारकाः ॥
सीतारामौ स्मरन्तश्च काष्ठादिपात्रशालिनः ।
भ्रमतः पुण्यतीर्थेषु सर्वथा दम्भवर्जिताः ॥
संन्यासिनो गृहस्थत्वे त्वारूढपतनं भवेत् ।
आरूढपतनस्यात्र प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
इह भ्रष्टाधिकारो हि गर्हितो मानवर्जितः ।
मृतो हि नरकं गच्छत्यारूढपतितो यतिः ॥
ब्रह्मचर्यं व्रतं रक्ष्यं गृहस्थान्याश्रमत्रये ।
तदभावे हि तत् स्थानान्नारूढपतनं भवेत् ॥
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य आरूढपतिताश्च ये ।
स्वाधिकाराद् बहिष्कार्या नृपैश्च धार्मिकैश्च तैः ॥

तथा चाहुः श्रीआनन्दभाष्यकारचरणाः-

न स्त्रियं परिगृह्णीयाद् विरक्तो वैष्णवः क्वचित् ।
मन्वादिस्मृतिशास्त्रेषु तन्निषेधस्य शासनात् ॥

करे। यदि वह विवाह करलेता है तो आरूढ पतित कहलाता है। आरूढ पतितों के लिये धर्म शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। ऐसे नैष्ठीक श्रीवैष्णव संन्यास धर्म में दिक्षित होकर पतित हो जाय उसे आत्म घाती कहा गया है। ऐसों को मठ के अध्यक्ष अर्थात् आचार्यत्व एवं अन्यों को दीक्षा देने सम्बन्धि कार्यों से प्रयत्न पूर्वक बहिष्कार करदेना चाहिये। ऐसे आरूढ पतितों को ब्रह्मविद्या से भी श्रीसम्प्रदाय के ७वें आचार्य श्रीव्यासजी ने बहिष्कार का आदेश दिया है। अतः शिष्टजन आरूढ पतितों को यज्ञादि शुभ कार्यों में यजन याजन आदि के लिये नहीं लेते हैं। इसलिये विरक्त श्रीवैष्णव को आरूढ पतित व्यक्ति को श्रीवैष्णवाराधन सम्बन्धि सत्कर्म में

विवाहे तु कृते स स्यादारूढपतितो ध्रुवम् ।
आरूढपतितस्यार्थे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
प्रच्युतो नैष्ठिकाद् धर्मादात्महापि प्रकीर्तितः ।
मठाध्यक्षत्वदीक्षादौ वहिष्कार्यः स यत्नतः ॥
व्यासेन ब्रह्मविद्यातो वहिष्कारोऽस्य सूचितः ।
शिष्टा यज्ञादिकार्य्येषु वर्जयन्ति तथा विधम् ॥

उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसे आरूढ पतितों का सन्सर्ग भी पाप कारक होता है।

इसीप्रकार अग्निपुराण में-मैं ऐसे आत्मघाती अर्थात् आरूढ पतित के लिये प्रायश्चित्त नहीं देखता हूँ जिससे की प्रायश्चित्त से वह शुद्ध हो। इसीप्रकार श्रीवैष्णवधर्म पीयूष में आचार्य श्री ने कहा है-परदाराभीगमन नहीं करना चाहिये, श्रीवैष्णव संन्यासी को। क्योंकि यह परधर्म होने से भय जनक है। विरक्त श्रीवैष्णव संन्यास ग्रहण करने के वाद कभी भी शादिकर गृहस्थ धर्म को स्वीकारना नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसे आरूढ पतित रूप महापाप का शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

इसप्रकार इन आरूढपतित व्यक्तियों के लिये शाश्त्रों के समूह में जो भी वचन कहे गये हैं उनका सारगर्भित अर्थ यह है कि क्षणिक वैराग्य उत्पन्न होने पर किसी भी व्यक्ति को कभी भी विरक्त दीक्षा नहीं लेनी चाहिये। अपना स्वरूप, सामर्थ्य, परिस्थिति, और वैराग्य इन सभी बातों को अच्छी तरह से विचार करके तत्पश्चात् विरक्त दीक्षा प्राप्त करने के लिये अच्छे गुणों से परिपूर्ण शास्त्रीय विधानानुसार परम्परागत दीक्षा-शिक्षा प्राप्त सदाचार परायण कुलीन श्रीवैष्णव ब्राह्मण आचार्य का अन्वेषण करे। आचार्य भी पहले शिष्य की परीक्षा करके मुमुक्षु को विरक्त साधु पुरुषों की सेवा में नियुक्त करे। शिष्य की दोष शून्यता का परीक्षण करलेने के पश्चात् सवसे पहले सामान्य दीक्षा के द्वारा शिष्य को अनुगृहीत किया जाना चाहिये। षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराममहामन्त्र का जप करने में अधिक से अधिक समय बिताया जाना चाहिये यह निर्देश देकर शिष्य के मनोभाव तथा योग्यता को समय-समय पर अच्छी तरह देखें। कथावार्त्ता आदि कालक्षेप के समय में समय-समय पर श्रवण और मनन के लिये निर्देश देवे। तत्पश्चात् शिष्य के स्वरूप योग्यता समय-समय पर रहस्य रूपमें परीक्षित करे। इसके वाद शिष्य का मनोभाव निर्दुष्ट परीक्षित हो जाने पर और उसके

विरक्तैः वैष्णवैस्तस्मादारूढपतितो न हि ।
व्यवहारेषु योक्तव्यः तत्संसर्गोऽपि पापकृत् ॥

तथा चाग्निपुराणे-
प्रायश्चितं न पश्यामि येन शुद्ध्येत् स आत्महा" तथैव श्रीवैष्णव धर्मपीयूषे-
परदारा न गन्तव्याः परधर्मो भयावहः ।
कदाचिदपि नो कुर्याद् विरक्तो हि गृहस्थताम् ।
यतस्तस्याश्च शास्त्रेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

इत्थमेतेषां शास्त्रविषयेषु यानि वचनानि सन्ति तेषामयं निर्गलितार्थो यत्-क्षणिकवैराग्ये समुत्पन्ने विरक्तदीक्षा कदापि न गृहीतव्या । स्वात्मस्वरूपं सामर्थ्यं परिस्थितिं वैराग्यं च सम्यग् विचार्य ततो विरक्तदीक्षा ग्रहणाय सदाचार्यस्यान्वेषणं कुर्यात् । आचार्योऽपि प्रथमं शिष्यंपरीक्ष्य विरक्तसाधुजन सेवायां नियोजयेत् । दोषराहित्ये परीक्षिते, प्रथमं सामान्यया दीक्षया शिष्योऽनुग्राह्यः । षडक्षरब्रह्मतारकस्य मन्त्रस्य च जपे अधिकाधिकः कालो-यापयितव्य इति निर्दिश्य शिष्यस्य मनोभावं योग्यतां च सम्यगवलोकयेत् । कालक्षेपसमये तं समये समये श्रवणाय मननाय च निर्दिशेत् । ततस्तस्य स्वरूपयोग्यता काले काले रहस्यरूपेण परीक्षेत् । तदनन्तरं निर्दुष्टे सिद्धे परीक्षिते च परमवैराग्ये, तस्य हठाधिकं विलोक्य पुनः परीक्षेत् । कामक्रोधलोभमोहादिषु अन्तःशत्रुषु विनष्टेषु विरक्तदीक्षया सम्यगनुगृह्णीयात् । अन्यथा देवधनस्य सम्प्रदायगतदोषस्य च सम्भवे आचार्योऽपि कथञ्चिद् दोषभाजनतां न गच्छेदिति सम्यग् विचार्य एवं विरक्त श्रीवैष्ण-

परम वैराग्य को जानलेने पर शिष्य के अधिक आग्रह को देखकर पुनः परीक्षण करे। काम क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्तः शत्रुओं को विनष्ट हो जाने पर विरक्त दीक्षा द्वारा सम्यक् प्रकार से शिष्य को अनुगृहीत करे । ऐसा नहीं करने पर दैवी सम्पत्ति का और सम्प्रदाय में होनेवाला दोष का प्रादुर्भाव होने पर उपदेश देनेवाला आचार्य भी किसी तरह दोष पात्रता को नहीं प्राप्त करे इसलिये सम्यक् प्रकार से विचार करके शास्त्र सम्मत विरक्त श्रीवैष्णव दीक्षा का एवं श्रीवैष्णवीय संन्यास दीक्षा का प्रदान

वदीक्षायाः संन्यासस्य च प्रदानमुचितम् ॥२८॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यस्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां पञ्चसंस्कारपूर्वकं गृहीत दीक्षानां विरक्तश्रीवैष्णवानां विवाहादिनिषेधाभिधानं प्रकरणं सम्पन्नमिति शम् ।

☬ त्रिदण्डतत्त्वविवेकः ☬

श्रीवैष्णवानां संन्यासदीक्षायाः संस्कारविधिनिरूपणप्रस्तावे मैत्रायणी श्रुतिनिर्दिष्ट यत्-''इन्द्रस्य वज्रोऽसीति'' त्रीन् वैणवान् दण्डान् दक्षिणे पाणौ

करना समुचित है ॥२८॥

इसप्रकार पश्चिमाम्नाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश श्रीरामानन्दवेदान्त पीठाधीश जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में विरक्त श्रीवैष्णवों का विवाहादि निषेध नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☬ त्रिदण्ड तत्त्व का विवेचन ☬

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों का संन्यास दीक्षा संस्कार की विधि का प्रतिपादन प्रकरण में मैत्रायणी श्रुति का निर्देश है कि ''इन्द्रस्य वज्रोऽसि'' इत्यादि मन्त्र के द्वारा बाँस की काष्ठ से बना हुआ तीन दण्डों को मोक्षाभिलाषी श्रीवैष्णव संन्यासी दाहिना हाथ में धारण करे । यहां पर इस विषय में विचार किया जाता है कि त्रिदण्ड धारण श्रीवैष्णव संन्यासियों के लिये कोई चिह्न विशेष हैं अथवा असाधारण धर्म है या त्रिदण्ड का तीनों दण्ड किसी रहस्य बना हुआ तत्व विशेष का प्रकाशन करते हैं । इस तरह के साधुओं में विभिन्न विचिकित्सा का अभ्युदय की सम्भावना करके त्रिदण्ड तत्व का विवेचन प्रारम्भ करते हैं । ऐसा विश्लेषण शुरु किये जाने पर वृद्धदक्ष स्मृति में देखा जाता है कि कायिक, वाचिक तथा मानसिक दण्ड स्वरूप तीनों दण्ड हैं, जैसा कि स्मृतिकार कहते हैं-वाग्दण्ड और मनोदण्ड तथा कर्म दण्ड ये तीन होते हैं । इन तीनों दण्डों को तात्विक रूपसे धारण करनेवाला संन्यासी वस्तुतः संन्यासी है । केवल बाँस का बना हुआ दण्ड धारण करने से संन्यासी ''संन्यासी'' नहीं होता । मौन व्रत का संयोग वाग्दण्ड कहा जाता है । अर्थात् यदि मौन धारण करेंगे तो अपने से किसी को कष्ट पहुँचने का अवसर नहीं होगा । जो पहले कायिक दण्ड कहे हैं

धारयेत् । अत्र विचार्यते यत् त्रिदण्डधारणं श्रीवैष्णवयतीनां चिह्नविशेषः लक्षणम् आहोस्वित् त्रयोदण्डाः, रहस्यभूतं तत्त्वविशेषं द्योतयन्तीति विवेचने प्रारब्धे कायिक वाचिक मानसिकाः त्रयोदण्डाः इति वृद्धदक्षस्मृतौ अवलोक्यते । तदाह वृद्धदक्षः-

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथापरः ।
एतैर्दण्डैस्तु दण्डीस्यान्नतु वैणवधारणात् ॥
वाग्दण्डो मौनसंयोगः कर्मदण्डस्त्वहिंसनम् ।
मानसः स तु दण्डः स्यात्प्राणायामस्य धारणम् ॥

वही कर्मदण्ड दूसरा दण्ड हैं । अर्थात् इस शरीर के द्वारा किसी भी तरह किसी भी प्राणि की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हिंसा नहीं करना कर्मदण्ड कहा जाता है । यथा समय यथा सामर्थ्य ब्रह्म साक्षात्कार हेतु प्राणायाम करते रहना मानसिक दण्ड हैं । इस प्राणायाम रूपी मानस दण्ड को धारण करने से समग्र जगत् श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष को प्रभु के स्वरूप में दृष्टिगोचर होगा तो किसी से विरोध की सम्भावना ही नहीं होगी । अथवा उसी प्रकरण में कहा है कि स्वयं में गार्हपत्याग्नि आहवनीयाग्नि तथा दक्षिणाग्नि आरोपितकर श्रीवैष्णव संन्यास दीक्षा ग्रहण करें । इस स्मृतिकार के द्वारा कहा गया सिद्धान्त को प्रकाशित करता हुआ श्रीवैष्णव संन्यासी गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि भेद से अग्नित्रय स्वरूप त्रिदण्ड है, इस बात को त्रिदण्ड अभिव्यक्त करता है । अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश स्वरूप बाँस का बना हुआ त्रिदण्ड श्रीवैष्णव संन्यासियों के द्वारा धारण किया जाता है । इस अभिप्राय को पूर्व में त्रिदण्ड संस्कार प्रसंग में विवेचन किया है । वह जैसे कि त्रिदण्ड के अग्र भाग को ब्रह्मा के स्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्मरण करें । द्वितीय भाग को पुरुषात्मा के स्वरूप में । तृतीय भाग को विश्वात्मा के स्वरूप में । चतुर्थ भाग को निवृत्ति पुरुष के रूप में एवं पञ्चम भाग को सर्वात्मा के स्वरूप में श्रीवैष्णव संन्यासी विशेष रूपसे चिन्तन करें । सम्पूर्ण त्रिदण्ड को विष्णु के स्वरूप में संन्यासी संस्मरण करें। तथा त्रिदण्ड नामक विष्णु रूप को हर परिस्थिति में श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें। ऐसा हारीत स्मृतिकार कहते हैं ।

अथवा ज्ञानदण्ड, आत्मदण्ड और मनोदण्ड ये तीनों दण्ड कहे जाते हैं । इस विषय में शौनक स्मृतिकार विशेष रूपमें कहते हैं कि ज्ञानदण्ड छोटा होता है । एवं

अथवा आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यसेत् इति स्मृतिकृदुक्तं सिद्धान्तं प्रकाशयन् यतिः गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि आहवनीयाग्नि भेदेन अग्नित्रय स्वरूपं त्रिदण्डं सूचयति ।

अथवा ब्रह्मविष्णुशिवस्वरूपं वैणवं त्रिदण्डं यतिभिर्धार्यते । तदुक्तम् त्रिदण्डसंस्कारप्रकरणे-

त्रिदण्डस्याग्रभागन्तु संस्मरेत्परमेष्ठिनं ।
द्वितीयं पुरुषात्मानं विश्वात्मानं तु मध्यमम् ॥

आत्मदण्ड आकार में मध्यम मान का होता है । तथा विष्णु दण्ड अर्थात् मनोदण्ड आकार में लम्बा होता है ऐसे त्रिदण्डों को श्रीवैष्णव संन्यासी धारण करें ।

लेकिन श्रीसम्प्रदाय में गुरु ज्ञान परम्परा से यह जाना जाता है कि ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद् इन प्रस्थानत्रय को आधार बनाकर त्रिदण्ड है । इस वस्तु को प्रकाशित करने के लिये ब्रह्मसूत्र गीता एवं उपनिषद् त्रिदण्ड से परिलक्षित होते हैं अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद और पृथिवी, आकाश, पाताल इन तीनों लोकों को त्रिदण्ड लक्षित करता है । और इसीप्रकार लोकैषणा वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा इन तीनों एषणाओं को मुझसे परित्याग करदिया गया है यह आशय प्रकाशित करने के लिये श्रीवैष्णव संन्यासी के द्वारा त्रिदण्ड धारण किया जाता है अथवा श्रीवैष्णव संन्यासी के द्वारा ब्रह्म जीव एवं माया स्वरूप तीनों तत्त्व भूत; भविष्यद् एवं वर्तमान काल इन तीनों में सत्यता तथा अध्यासवाद, प्रतिबिम्बवाद तथा मायावाद का निरसन स्वरूप, शेष-शेषी भावात्मक त्रिदण्ड धारण किया जाता है यह ज्ञात होता है । इसप्रकार पूर्व में प्रतिपादित किये गये तत्वो को त्रिदण्ड के द्वारा प्रकाशित किया जाता है यह श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के परम्परा से प्राप्त त्रिदण्ड तत्त्व ज्ञान है । इसी अभिप्राय को हमारे अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी शिक्षा दीक्षा गुरु श्रीमान् योगिराजजी के द्वारा कहा गया है कि श्रीवैष्णव संन्यासी मन वचन एवं कायिक दण्ड स्वरूप त्रिदण्ड की भावना करे । सत्व रज और तमो गुण से उद्रेक अवस्था को प्राप्त सत्वस्वरूप गुणातीत त्रिदण्ड की भावना करे । चित्-अचित् एवं ब्रह्म रूप तीन तत्वों के स्वरूप में श्रीवैष्णव संन्यासी त्रिदण्ड की भावना करें । माया, अध्यास एवं प्रतिबिम्बवाद इन तीनों वाद का निरा-करण स्वरूप त्रिदण्ड की श्रीवैष्णव संन्यासी भावना करें । एवं ब्रह्म, विष्णु, शिव

तुर्यं निवृत्तिपुरुषं सर्वात्मानन्तु पञ्चमम् ।

त्रिदण्डं समुदायेन विष्णुरूपं स्मरेद्यतिः ॥

हारीतश्चाह-

विष्णुरूपं त्रिदण्डाख्यं सर्वथा धारयेद्यतिः । अथवा ज्ञानदण्डः आत्मदण्डः मनोदण्डश्चेति दण्डत्रयमुच्यते । अत्र विषये शौनकः प्राह-

ज्ञानदण्डो भवेद्ध्रस्व आत्मदण्डस्तु मध्यमः ।

विष्णुदण्डस्तु दीर्घःस्याद्त्रिदण्डं धारयेद् यतिः ॥

श्रीसम्प्रदाय परम्परया तु इदं ज्ञायते यत् प्रस्थानत्रयमाधृत्य धृतोऽयं दण्डः इति द्योतनाय ब्रह्मसूत्रं गीता उपनिषदश्च दण्डत्रयेण लक्ष्यन्ते । अथवा ऋक्सामयजूँषि लोकत्रयञ्च त्रिदण्डं लक्षयति । तथा च लोकैषणां वित्तैषणां पुत्रैषणाञ्च मया श्रीवैष्णव संन्यासिना परित्यक्तमिति त्रिदण्डं धार्यते । अथवा तत्त्व स्वरूप त्रिदण्ड की संन्यासी भावना करें । तथा तीनों प्रकार की अग्नि तीनों लोक तीनों वेद गायत्री सावित्री आदि तीनों देवियाँ तथा प्रस्थानत्रय के तीनों तत्व स्वरूप में त्रिदण्ड को श्रीवैष्णव संन्यासीगण चिन्तन करें । उनका इस अंश में विशेष आग्रह रहता था कि प्राणायाम ध्यान एवं जप यथा शक्ति निरन्तर पुनः-पुनः करते रहने पर विरक्त श्रीवैष्णव पुरुषों का पाप समुदाय अहर्निश जलता रहता है । जिस प्रकार लकडी के ढेर में आग का संयोग हो जाने पर काष्ठ निरन्तर जलता रहता है। उसी प्रकार प्राणायाम जप एवं ध्यान के द्वारा समस्त पाप जलते हैं । इस विषय में विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी किसी भी प्रकार कभी भी प्रमाद नहीं करें । सदैव सर्वेश्वर श्रीरामजी ब्रह्म के चिन्तन में रहें । इसप्रकार त्रिदण्ड की भावना सदैव करें । आत्मज्ञानानुरागी सम्यक् प्रकार से शास्त्रीय विधान परिपालक एवं पाखण्ड से रहित होकर श्रीवैष्णव संन्यासी संसार में विचरण करे यह त्रिदण्ड उनको समझाता है । दुर्जनों के मुख से निकले हुए अपने सामने आये हुए वाणिरूपी वाणों को आनन्द पूर्वक झेलता हुआ बुद्धि तथा भावना से पूर्ण प्रसन्न रहता हुआ श्रीवैष्णव संन्यासी कभी क्रोध नहीं करता है । इसप्रकार का तितिक्षाशील अभीष्ट एवं अनिष्ट प्राणियों पर विपत्ति एवं अभ्युदय आदि सभी अवस्थाओं में पूर्ण शान्त ज्ञान बल एवं ऐश्वर्य से संसार के साथ कठोरता रहित मृदुव्यवहारशील श्रीवैष्णव संन्यासी हो इस बात को

श्रीवैष्णवसंन्यासिभिः चिदचिदीस्वरात्मकं भूतभविष्यद्वर्त्तमानेति त्रिकाल सत्यम् मायावाद अध्यासवाद प्रतिबिम्बवाद निरासात्मकं शेषशेषिभावात्मकं त्रिदण्डं धार्यते इति ज्ञायते । एवं पूर्वनिरूपितानि तत्त्वानि त्रिभिः दण्डैः प्रकाश्यन्ते इति श्रीसम्प्रदायपरम्परा प्राप्तं सम्प्रदायादागतं त्रिदण्डतत्त्वं विद्यते । तदुक्तमस्मद्गुरुणानन्तविभूतिविभूषितेन श्रीमता योगिराजेन →

मनोवाक्कायदण्डाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
सत्वोद्रेकं गुणातीतं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
एषणात्रयशून्याख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
चिदचिज्जीवतत्त्वाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
वादत्रयनिरासाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
ब्रह्मविष्णुशिवं तत्त्वं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ।
अग्नित्रयं तथा लोकान् वेदान्तेभ्यस्तथैव च ।
प्रस्थानत्रयतत्त्वाख्यं त्रिदण्डं भावयेद् यतिः ॥
प्राणायामैश्च ध्यानैश्च जपैश्च सततं कृतैः
दह्यन्ते सर्वपापानि पावकेनेन्धनं यथा ।
कदाचिदपि संन्यासी न प्रमाद्यत कर्हिचित् ।
ब्रह्मध्यानपरो योगी त्रिदण्डं भावयेत् सदा ॥

आत्मरतिः, संविधानशीलः दम्भवर्जितश्च यतिस्यादिति त्रिदण्डं यतीन् बोधयति । दुर्जनमुक्तान् वाग्वाणान् समापतितान् सानन्दं सहमानः बुद्ध्या भावनया च संहृष्टो यतिः कदाचिदपि न कुप्यति, एवं विधः तितिक्षाशीलो, इष्टानिष्टेषु भूतेषु व्यसनाभ्युदयादिसर्वास्ववस्थासु उपशान्तः, ज्ञानबलैश्वर्यै लोकपारुष्य विरहितो यतिस्यादिति त्रिदण्डमुपशिक्षयति ।

त्रिदण्ड अपनी श्लक्षणता आदि गुणों से शिक्षा देता है । विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी सांसारिक क्लेशों को देखकर मृत्यु का अभिनन्दन नहीं करे तथा भोग लिप्सा से जीवन का भी अभिनन्दन नहीं करे। केवल समय की ही प्रतिक्षा करता रहे एवं त्रिदण्ड से चिन्तनशील रहे । अपने सुख सुविधा के लिये आग नहीं जलाये तथा अपने मात्र रहने के लिये पीठ-मठ नहीं बनाये एवं जो सदैव श्रीराम स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत इति दण्डेन भावयेत् ॥
अनग्निरनिकेतोयो रामब्रह्मविचिन्तकः ।
स वै त्रिदण्डिनां श्रेष्ठो इति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥२९॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीशस्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां त्रिदण्डतत्व विवेचनात्मकः प्रकरणः परिपूर्णः ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☬ यतिसंस्कारविधिः ☬

दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खः पण्डित एव वा ।
काषायमात्रवेषेण यतिः पूज्यो युधिष्ठिरः ॥

करता है वही त्रिदण्डधारियों में श्रेष्ठ है यह शास्त्रों का निश्चय है ॥२९॥

इसप्रकार श्रीपश्चिमाम्नाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में त्रिदण्ड तत्व नामक प्रकरण सम्पूर्ण हुआ ।

☬ श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ☬

☬ श्रीवैष्णवसंन्यासियों का अन्तिम संस्कार विधान ☬

महाभारत में कहा है कि हे युधिष्ठिर दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो अथवा विद्वान् ही हो किन्तु काषाय वेश धारण करने मात्र से ही श्रीवैष्णव संन्यासी समाज के सभी वर्गों के लिये पूजनीय है। चारों वेदों को जाननेवाला जो ब्राह्मण है अथवा सोमयाजी या सैकडों यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण है उन सबके अपेक्षा भी अधिक पूजनीय श्रीवैष्णव संन्यासी है। इन दोनों में तिल और मेरु के समान महान् अन्तर है। जिसप्रकार दिवाकर सूर्य एवं खद्योत इन दोनों में अन्तर है उसी तरह विरक्त श्रीवैष्णव एवं गृहस्थ में महान् अन्तर विद्वानों के द्वारा देखा गया है। जो व्यक्ति श्रीवैष्णव संन्यासी को देखकर अपना आसन शय्या आदि को छोडकर उनके सत्कार के लिये खडा नहीं हो जाता है वह व्यक्ति अविवेकी होकर मरने के पश्चात् तिर्यक् योनि में जन्म ग्रहण करता है।

चतुर्वेदोऽपि यो विप्रः सोमयाजीशतक्रतुः ।
तस्मादपि यतिः श्रेष्ठः तिलमेरुवदन्तरम् ॥
सूर्यखद्योतयोर्यद्वन्मेरुसर्षपयोरपि ।
अन्तरं हि महद् दृष्टं तथा भिक्षुगृहस्थयोः ॥
आसनं शयनं वापि यतिं दृष्ट्वा त्यजेन्न यः ।
समूढात्मा मृतस्तस्मात्तिर्यग् योनिषु जायते ॥

इसप्रकार के समाज के लिये सभी के द्वारा पूजनीय गुण समुदाय से अलंकृत सर्वोत्तम आश्रम में निवास करनेवाले श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्त के अनुयायी परम विरक्त संन्यासियों के परमधाम श्रीसाकेतलोक में प्रस्थान करलेने पर अर्थात् देह त्याग के वाद किस विधि से अन्तिम संस्कार करना चाहिये यह विचार करना परम आवश्यक प्रतीत होता है यदि ऐसा नहीं हो तो मुण्ड-मुण्डे मतिर्भिन्ना की स्थिति हो जायगी । श्रीवैष्णव संन्यासियों के अन्तिम संस्कार के विषय में वृद्ध याज्ञवल्क्य स्मृतिकार कहते हैं कि श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर त्याग करलेने के पश्चात् ब्राह्मण गृहस्थ उनके शरीर का संस्कार करे । अग्नि को जलाकर माला आदि के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी के भौतिक शरीर को अलंकृत करके शरीर को शिक्य पर चढाकर प्रज्वालित अग्नि के साथ में गाँव से बाहर ले जाकर प्रशंसनीय माङ्गलिक मन्त्रों को वाद्यादि ध्वनि के साथ उच्चारण करके गाँव से पूर्व दिशा वा उत्तर दिशा में पवित्र देश में मृत शरीर को रखे । व्याहृति मन्त्रों के साथ श्रीवैष्णव संन्यासी के दण्ड के माप के अनुसार जमीन को खेदकर उस स्थान को सात व्याहृति मन्त्रों का उच्चारण करते हुये अभिषेक करे । तत्पश्चात् यज्ञ में उपयोग करने योग्य काष्ठों से सुन्दर चित्ता बनावे । सावित्री मन्त्र से मृत देह को प्रक्षालितकर चित्ता पर स्थापित करे ।

'विष्णोर्हव्यं रक्षस्व०' इस मन्त्र से रखकर मुख में जल पवित्रक रखे । पवित्रं ते० इत्यादि मन्त्र द्वारा मृत शरीर के दाहिना हाथ में दण्ड रखे । इदं विष्णुर्विचक्रमे० इस मन्त्र को पढकर मृत संन्यासी के बायाँ हाथ में शिख्य रखे अथवा यदस्य पारे रजसः इत्यादि के द्वारा शिक्य रखे । सावित्री मन्त्र के द्वारा उदर पर भिक्षापात्र रखे एवं जननेन्द्रिय के स्थान पर कमण्डलु रखे । भूमिर्भूमिमगात्० इस मन्त्र को पढकर आग से श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का अन्तिम संस्कार करे तत्पश्चात् उसके श्राद्धादि का कोई विधान नहीं है । जो भी श्रीवैष्णव संन्यासी के शव यात्रा में अनुगमन करते

एवं विधगुणगणपरिमण्डितस्य सर्वश्रेष्ठाश्रमस्थस्य श्रीसम्प्रदायीय श्रीरामानन्दीय सिद्धान्तानुयायिनः परमविरक्तस्य श्रीवैष्णवसंन्यासिनः परमधामनि श्रीसाकेतलोके सम्परेते (देहत्यागेकृते) केन विधिना अन्तिमः संस्कारः कर्तव्यः, इति विवेकः परमावश्यकं प्रतीयते, अन्यथा मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना इति चरितार्था स्यात् श्रीवैष्णवीयविरक्तदीक्षादीक्षितयतीनामन्तिम संस्कारविषये वृद्धयाज्ञवल्क्यः प्राह-

अथ विप्रो गृहस्थस्तु यतिसंस्कारमाचरेत् ।
अग्निमुत्पाद्य माल्याद्यैरलंकृत्यास्य देहिकम् ॥

हैं अथवा शरीर का वहन करते हैं अथवा दाह संस्कार करते हैं उन सभी का शरीर स्नान मात्र से ही परम पवित्र हो जाता है उसके लिये क्षौर अथवा किसी प्रकार के कर्म करने की अपेक्षा नहीं है। शरीर त्यागी श्रीवैष्णव संन्यासी के संन्यास ग्रहण करने से पूर्व के जो पुत्र पौत्रादि सगा सम्बन्धी हैं उनके भी स्नान मात्र से ही सद्यः पवित्रता हो जाती है । इस विषय में श्रीबोधायन स्मृतिकार कहते हैं कि-

श्रीवैष्णव संन्यासियों के प्रेत संस्कार विधि को विस्तार के साथ कहता हूँ→ शान्त श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का गृहस्थ स्नान करके पवित्र होकर अन्तिम संस्कार करे। सहस्रशीर्षा पुरुषः० आदि सोलह ऋचाओं वाला पुरुषसूक्त के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का स्नान संस्कार सम्यक् प्रकार से करे। तत्पश्चात् शिक्य पर शरीर को रखकर गन्ध पुष्प माला आदि से अलंकृत करके गाजा बाजा आदि को बजाकर नृत्य गीतादि का आचरण करे। नदी के तट पर, पहाड के पास, गोशाला में, पीपल वृक्ष के पास, अथवा पलाश वृक्ष की छाया में पवित्र स्थान पर शान्त परिव्राजक के शरीर को रखकर श्रीवैष्णव संन्यासी के दण्ड की लम्बाई के प्रमाण के अनुसार देवयजन भूमि को भूः स्वाहा आदि मन्त्र से खोदकर, सात व्याहृति मन्त्रों के द्वारा अर्थात् ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐस्वः, ॐमहः, ॐजनः, ॐतपः, ॐसत्यम् इस मन्त्र से भूमि को सम्यक् प्रकार से सिञ्चितकर येनादेवा ज्योतिषोर्ध्वादायन...इत्यादि मन्त्र के द्वारा परिव्राजक शरीर को उसके ऊपर रखकर "विष्णोर्हव्यं रक्षस्व" इस मन्त्र से उस शरीर को कूर्मासन में सुस्थिर करके, "पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते"...इस मन्त्र को पढकर परिव्राजक के मुख भाग में जल पवित्री स्थापित कर "इदं विष्णुर्विचक्रमे"...इस मन्त्र से श्रीवैष्णव संन्यासी के दाहिना हाथ में त्रिदण्ड धारण

आरोप्यशिक्यं तच्चाग्निंनीत्वा ग्रामात् ततो बहिः ।
प्रशस्तै मङ्गलैरुक्तं वाद्यादिध्वनिभिस्तथा ॥
दिशं प्राचीमुदीचीं वा न्यस्य देशे शुचौ मृतम् ।
खात्वा व्याहृतिभिर्भूमिदण्डायाम प्रमाणकम् ॥
अथ प्रोक्ष्य तु तं देशं व्याहृतिभिश्च सप्तभिः ।
याज्ञिकैर्दारुभिस्तत्र चितां कृत्वा शुभैस्तथा ॥
देहं प्रक्षाल्य सावित्र्या चितायां तं विनिक्षिपेत् ।
विष्णोर्हव्यमिति न्यस्य मुखे जलपवित्रकम् ॥

करा के तत्पश्चात् "यदस्य पारे रजसः"...इत्यादि मन्त्र को पढकर उनके हाथ में शिक्य स्थापित करे। तत्पश्चात् श्रीवैष्णव संन्यासी के उदर भाग में "ॐ भूः ॐ भुवः आदि सात व्याहृति मन्त्रों को पढकर भिक्षापात्र को संस्थापित करे दोनों भौंहो के मध्यभाग में "सहस्त्रशीर्षा"...आदि सोलह ऋचाओं को पढकर अभिमन्त्रित करे, तत्पश्चात् "ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्"...। "भूमिर्भूमिमगात् माता"...इन दोनों मन्त्रों को पढकर श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के जननेन्द्रिय के गुह्य स्थान पर कमण्डलु को संस्थापित करे। "हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धो"...ऋत बृहत् पर्यन्त मन्त्र को पढकर श्रीवैष्णव संन्यासी के हृदय प्रदेश को स्पर्श करके, "सहस्त्रशीर्षा पुरुषः"...आदि सोलह शुक्ल यजुर्वेद के ऋचाओं को श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के देह के भौंहो के मध्यभाग को अभिमन्त्रित कर तत्पश्चात् परिव्राजक पुरुष के शरीर के मुख भाग को अन्तिम संस्कार करने वाला पुरुष अपने अभिमुख सुस्थिर करके, दश होताओं के द्वारा श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के शान्त देह को अभिपूजित करे। दश होताओं के द्वारा उपस्थान करने की जो प्रक्रिया बतलायी गयी है, उसमें होताओं का विवरण निम्न लिखित प्रकार से कहा गया है। ब्राह्मण सर्व प्रथम होता है। वह यज्ञ स्वरूप है, वह मुझे प्रजा पशुगण पुष्टि समृद्धि तथा कीर्ति आदि प्रदान करे, और मेरा यज्ञ परिपूर्ण हो।

अग्नि द्वितीय होता है, वह अग्नि मुझ यजमान का भरण पोषण करनेवाला है। वह अग्निदेव मुझे सन्तान परम्परा पशु समुदाय, पोषण के समस्त साधन प्रकार, एवं यश प्रदान करे और मेरा धारण पोषण करनेवाला होवे। दश होताओं में पृथिवी तृतीय होता है, वह पृथिवी प्राणी मात्र के प्रकृष्ट रूपसे स्थिति का आधार है। वह

पवित्रं ते इति न्यस्य दण्डं दक्षिणहस्तके ।
इदं विष्णुरितिन्यस्य शिक्यं सव्यकरे यतेः ॥
यदस्यपारेरजसः शिक्यमित्यादिनैव च ।
सावित्र्याचोदरे पात्रं गुह्यस्थाने कमण्लुम् ॥
भूमिर्भूमिमगान्मन्त्रमुक्ताऽथाप्युपतिष्ठते ।
त्रिपञ्चभिरहोरात्रैः षड्भिरित्यपरे जगुः ॥

मुझ यजमान को प्रजा पशु पुष्टि एवं कीर्ति प्रदान करे और इस संसार में मेरी प्रतिष्ठा हो । और इस प्रक्रिया में अन्तरिक्ष चतुर्थ होता है वह अन्तरिक्ष समस्त प्राणी मात्र को अपने आयतन में प्रवेश करानेवाला हैं, अन्तरिक्ष में सव कुछ समाहित हो जाता है । वह मुझ यजमान को प्रजा समूह पशुगण पुष्टि एवं कीर्ति प्रदान करे और मेरे लिये अवकाश प्रदान करनेवाला हो । इस यज्ञ का वायु पाँचवाँ होता है, वह वायु समस्त जडचेतन का प्राण स्वरूप है वह वायुदेव मुझ यजमान को सन्तान परम्परा पशुगण एवं पुष्टि तथा यश प्रदान करें और मेरे प्राण बल परिपूर्ण हों । चन्द्रमा छठा होता है, वे चन्द्रमा हेमन्त शिशिर वसन्त आदि छः ऋतुओं की संरचना करते हैं । वे मुझ यजमान को प्रजा पशुगण पुष्टि एवं कीर्ति प्रदान करें और समस्त ऋतुगण मुझ यजमान के लिये सदैव मङ्गलमय एवं सर्वविध आनन्दकारी हों । अन्न सातवाँ होता है, वह अन्न समस्त प्राणों को भी अनुप्राणित करनेवाला है । वह अन्न मुझ यजमान को प्रजा पशु पुष्टि एवं यश प्रदान करता रहे । और मुझ यजमान के लिये प्राणों का भी जो प्राण स्वरूप में विद्यमान अन्न है वह सर्वदा अक्षुण्ण मात्रा में उपलब्ध हो । आकाश अष्टम होता है, वह अदमनीय है, आकाश मुझ यजमान को अदमनीय बनावे, वह मुझे प्रजा पशु पुष्टि और यश प्रदान करे, और मैं यजमान किसी के लिये भी धर्षनीय नहीं बनूँ । और आदित्य नवम होता है, अत्यन्त प्रभावशाली आदित्य हैं, अत्यन्त प्रभावशाली भगवान् आदित्य मुझे प्रजा पशु पुष्टि तथा यश प्रदान करें । और मैं यजमान तेजस्वी बनूँ । प्रजापति दशम होता है, प्रजापति ही जो कुछ दृश्य जगत् है, सभी कुछ है । वह प्रजापति मुझे प्रजा पुष्टि एवं यश प्रदान करें । अग्नि होता इत्यादि अनुवाक के द्वारा यति को सम्यक् स्पर्श करके तथा स्तुति करके, चावल के भूसा से शान्त शरीर को प्रज्वलित कर दे ।

ईशावास्य उपनिषद् में शरीरान्त के सम्बन्ध में कहा गया है→यह आत्मा परम

अग्निना च दहेत्तेन नास्ति कर्मोदकादिकम् ।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति वहन्ति च दहन्ति च ॥
स्नानमात्रेणशुद्धाः स्युरश्वमेधफलं च ते ।
तस्य ये बान्धवास्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥

श्रीबोधायनश्चाह-

यतीनां प्रेतसंस्कारविधिं वक्ष्याम्यशेषतः ।
स्नात्वा गृहस्थः शुद्धात्मा यतिसंस्कारमाचरेत् ॥
पौरुषेणैव सूक्तेन यतेः स्नानं समाचरेत् ।
शिक्ये शरीरमारोप्य गन्धमाल्यैरलंकृतम् ॥

पुरुष श्रीरामचन्द्रजी के संकल्पानुसार, अपने ज्ञान एवं कर्म के अनुसार देव मनुष्यादि योनियों में वायु के समान गतिशील है, इसलिये वायु स्वरूप आत्मा अनिल का अर्थ निलय विहीन होता है, जीवात्मा स्वरूप एवं धर्म से आत्मा निलय विहीन है, अथवा अनिल पवन उसके समान जीवात्मा भी कहीं भी देह में स्थिर नहीं होता है। एवं अमृत स्वरूप "अयमात्मा अपहत पाप्मा विरजो विमृत्युः" इस श्रुति के अनुसार अमर है। इसतरह के गुणों से परिपूर्ण नित्य आत्मा का भौतिक शरीर भस्मान्त है। अन्य श्रुतियों में 'भस्मान्ता वा विडन्तावा' ऐसा भी कहा गया है। व्याघ्र आदि जन्तुओं के द्वारा पृथ्वी पर तथा जल आदि में ग्राह आदि के द्वारा भक्षित होने पर शरीर का विष्ठा रूपमें परिणाम देखा गया है। पर यह पूतात्मा विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी के लिये उचित नहीं वेद विरुद्ध होने से अतः दाहसंस्कार ही करना चाहिये जल प्रवाह या खात नहीं यहाँ इदम् शब्द से दृश्य शरीर का कथन किया गया है। पुत्रादि के द्वारा शरीर का अग्नि संस्कार करने पर भस्म रूप में चरम परिणाम होता है। इसलिये श्रुति भस्मान्तं शरीरम् कहती है। ॐ शब्द से प्रणव वाच्य है। परमात्मा प्रणव स्वरूप में जीवात्मा के द्वारा उपासनीय है। कहीं 'अहंक्रतुरहं यज्ञः' आदि के द्वारा सर्वेश्वर श्रीराम क्रतु शब्द से वाच्य हैं अर्थात् उस परमात्मा का स्मरण करो एवं जन्म जन्मान्तर में किये गये अपने कर्त्तव्य का स्मरण करो। इसतरह शरीर का भस्मान्त प्रतिपादन करने के कारण अग्नि संस्कार अभिप्रेत है। सामान्य रूपसे विवेचन करने पर प्रतीत होता है कि मृत्यु शब्द का पर्यायवाची पराशु प्राप्त पञ्चत्व परेत, प्रेत, संस्थित, मृत, एवं प्रमीत ये मृत्यु पर्यायवाची शब्द तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं। इनमें प्राप्त पञ्चत्व का जिसने पंञ्चत्व को प्राप्त कर लिया है इस व्युत्पत्ति

घोषयित्वा तु वाद्यादीन् नृत्यगेयानि कारयेत् । नदीतीरे पर्वतसमीपे गोष्ठे अश्वत्थसमीपे पलाशच्छायायां वा शुद्धे देशे परिव्राजकं निधाय तस्य दण्डायामप्रमाणं देवयजनम् "भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा सुवः स्वाहा, भुर्भूवः सुवः स्वाहा" इति खात्वा सप्तव्याहृतिभिर्देवयजनम् सम्प्रोक्ष्य कूर्मासनम् "येन देवा ज्योतिषोर्ध्वादायन् येनादित्या वसवो येन रुद्राः येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैव तु यजमानः स्वस्ति' इति निधाय तस्योपरि परिव्राजकम्
के द्वारा ज्ञात होता है कि पृथ्वी जल तेज वायु एवं आकाश का मिश्रित स्वरूप यह पाञ्च भौतिक शरीर है। आत्मा के इस पाञ्च भौतिक शरीर से निकल जाने पर पाँचों महाभूत के पाँचों तत्त्व पृथ्वी जल आदि में विलीन हो जाते हैं। शरीर में आत्मा के रहने पर ही महाभूतों की स्व स्वरूप में स्थिति होती है। वैज्ञानिकों का यह निश्चित सिद्धान्त है कि संसार में जो भी तत्त्व विद्यमान हैं उनकी कभी कमी नहीं होती है एवं वृद्धि भी नहीं होती है। उन्हीं तत्त्वों में से किसी आधार में क्षीणता होती है तो दूसरे में सम्बद्र्धन हो जाता है किन्तु नया तत्त्व का प्रादुर्भाव नहीं होता है सभी ही प्राणियों का सरीर से प्राण वायु निकल जाने पर पाँचों तत्त्वों का मिलन स्वरूप पञ्चत्व की प्राप्ति होती है। शरीर धारियों के शरीर वस्तुतः कृमि, विष्ठा एवं भस्म रूपमें चरम परिणति प्राप्त करते हैं। जैसे कि किसी के शरीर का यदि संस्कार नहीं होता है तो उसके शरीर को जलचर आकाशचारी चील्ह आदि तथा कुत्ता, सियार, बाघ आदि श्वापद खा लेते हैं तव विष्ठा रूपमें शरीर की चरम परिणति होती है। यदि किसी के शरीर को गड्ढा खोदकर उसमें डालकर मिट्टी से भर दिया जाता है तो कृमि स्वरूप में उसका अन्त होता है और आग से जला देने पर भस्म रूपमें अवसान होता है लेकिन सभी जगह पार्थिव तत्त्वों का पृथिवी में विलय, वायवीय का वायु में, जलीय का जल में, तैजस् का तेज में और आकाशीय तत्त्व का आकाश में अन्त होता है। इस विषय में किसी का मतभेद नहीं है।

किन्तु साधु पुरुषों के शरीर शान्त हो जाने पर समाज में तीन प्रकार की व्यवस्था देखी जाती है कोई पुरुष शान्त शरीर को जल समाधि करता है अन्य व्यक्ति साधु पुरुष के शान्त शरीर को जमीन खोदकर उस खात में शरीर को डालकर मिट्टी आदि से भर देते हैं। लेकिन अन्य स्थानों पर जिसके सगा सम्बन्धी भाई, भतीजा, पुत्र पौत्रादि होते हैं वे सम्मान पूर्वक चिता में स्थापित करके काष्ठ आदि के द्वारा शरीर को जलाकर भस्मसात् करदेते हैं। जिसका जो सम्प्रदाय परम्परा से आया हुआ

"विष्णो हव्यं रक्षस्व" इति संस्थाप्य पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रितास उद्वहन्तस्तत्समासते । इति मुखेजलपवित्रं निधा "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम् समूढमस्य पा७सुरे स्वाहा इति दक्षिणे हस्ते दण्डं दत्वा "यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत । तन्नः पर्षदतिद्विषः अग्नेवैश्वानरः स्वाहा" । इति शिक्यं दत्वा
पारम्परिक व्यवहार दीर्घकाल से चलरहा है उस पारम्परिक व्यवहार को परित्याग करने के लिये अथवा इस विषय पर शास्त्रीय दृष्टि से तात्विक रूपमें विचार करने के लिये इच्छा नहीं करता है । लेकिन भारत वर्ष में हमारे वैदिक धर्म का अनुशरण करनेवाले विविध सम्प्रदाय के लोगों के लिये वेद शास्त्र के द्वारा विहित अत्यन्त पवित्रतम तथा अतिशय श्रेष्ठ व्यवस्था है । इस विषय में किसी भी प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों का मतभेद अथवा पक्षद्वयात्मक सन्देह नहीं है । संसार में जिस किसी देश में अथवा धर्मों में धर्म शास्त्रों के द्वारा जो कोई भी व्यवस्थायें होती हैं वे व्यवस्थायें देश, काल, तथा पात्र पर आधारित होती है जैसे ध्रुवीय प्रदेशादि में वर्फ के अतिरिक्त दूसरा कोई भी साधन नहीं होता है इसलिये वहाँ पर शरीर का संस्कार करने के लिये वर्फ में ही शान्त शरीर का खनन को छोडकर दूसरा कोई उपाय नहीं होता है अत एव उस वर्फीला प्रदेश में शरीर को वर्फ में दवा देना ही धर्म है । जहाँ समुद्र से घिरा हुआ प्रदेश होता है वहाँ समुद्री द्वीपों में लकडी का अभाव होने के कारण जल समाधि से अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं है । इसलिये वहाँ पर निवास करनेवाले लोगों के शरीर को जल समाधि करना ही धर्म होता है । लेकिन इस भारत वर्ष में जल समाधि, निखनन एवं अग्नि संस्कार ये तीनों ही प्रकार के शरीर का अन्तिम संस्कार सम्भव है । साधन समुदाय भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं ।

अतः यहाँ पर अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में यह विचार किया जाता है कि जहाँ पर दीर्घकाल पर्यन्त दिनरात वर्षा होती रहती है प्रदेश का सारा भू भाग जल से आप्लावित होता है । और जलाने का साधन का सर्वथा अभाव होता है वहाँ पर देशकाल जनित कठिनाई उत्पन्न होने के कारण अग्नि के द्वारा शान्त शरीर का संस्कार होना सम्भव नहीं है ।

यदि ऐसी स्थिति हो तो शान्त शरीर को निखनन एवं जल समाधि में किसी प्रकार का दोष नहीं है दूसरे स्थानों पर तो धर्म शास्त्रीय व्यवस्था का अनुशरण करना

सप्तव्याहृतिभिः पात्रमुदरे दत्वा पुरुषसूक्तं भ्रुवोः, "ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोत्वेन आवः स बुद्ध्न्या उपमा अस्या विष्ठां शतश्च योनिमशतश्च व्विवः ॥ भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यागत । भूयास्मपवित्रैः पशुभिर्यो नौ द्वेष्टि स भिद्यताम् । इति गुह्यस्थाने कमण्डलुंन्यस्य "हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृसद्वर सदृतसद्व्योमजा

ही चाहिये इस विषय में और अधिक मनुस्मृतिकार कहते हैं जिसप्रकार काष्ठ लोष्ठ आदि महत्त्वहीन वस्तुओं को मानव उपेक्षा दृष्टि से जमीन पर फेंककर चलेजाते हैं उसी प्रकार मृत शरीर को छोडकर उदासीन बन्धु बान्धव सगा सम्बन्धी चले जाते हैं किन्तु उस आत्मा का सगे सम्बन्धियों को छोडकर चले जाने पर भी धर्म अनुशरण करता है। दो वर्षों से कम अवस्था के मृत शरीर को बन्धु बान्धव गाँव से बाहर ले जाकर शरीर को अलंकृत करके पवित्र भूमि में गाड़ देते हैं। अस्थि सञ्चयन आदि कर्मों को छोडकर अन्य सभी कर्म करते हैं उसका अग्नि संस्कार नहीं करना चाहिये तथा श्राद्धादि क्रियायें भी नहीं करना चाहिये। जैसे जंगल में काष्ठ को निर्मोह होकर छोड देते हैं उसी प्रकार निर्मोह होकर छोडकर त्रिरात्राशौच मानना चाहिये। जिसका तीन वर्ष पूरा नहीं हुआ है ऐसे शरीर के अन्तिम संस्कार में बन्धु-बान्धवों के द्वारा पिण्डदानादि क्रियायें नहीं करनी चाहिये अथवा जिसके दाँत निकल आये हैं अथवा नामकरण हो गया है उसके श्राद्धादि क्रियायें करनी चाहिये। मनुस्मृतिकार के जंगल में काष्ठ के समान छोड़कर इस वचन के स्थान पर याज्ञवल्क्य स्मृतिकार कहते है कि दो वर्ष से कम अवस्था के शव को जमीन खोदकर गाड़ देने की व्यवस्था करते हैं ।

और ब्रह्मपुराण में भी कहा गया है कि पतित व्यक्तियों का दाह संस्कार भी नहीं होता है अन्त्येष्टि भी नहीं होती है एवं अस्थि सञ्चय भी नहीं होता है। तथा उसके लिये रोना आँसू बहाना पिण्डदान अथवा श्राद्ध आदि क्रियायें भी कहीं पर नहीं की जाती है।

ये उपर्युक्त कर्म पतित लोगों का दाह संस्कारादि अन्तिम क्रियायें विशेष प्रकार के मोहजाल में पड़कर जो व्यक्ति करता है वह कण्ठोदक क्रिया आदि करने के पश्चात् तप्तकृच्छ्र से विशुद्ध होता है ।

शास्त्रों में दूसरे स्थानों पर देखा जाता है कि ज्ञाननिष्ठ संन्यासियों के शरीर के लिये अन्तिम संस्कार के समय नमक के साथ जमीन के अन्दर समाधि लगाने का विधान किया जाता है। इसे जमीन के अन्दर गाड़ने के पश्चात् कथञ्चिद्दैव संयोगात्

गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ इति हृदय प्रदेशं स्पृष्ट्वा संजप्य सहस्त्रशीर्षापुरुषः इति मन्त्रेण पुरुषसूक्तेन भ्रुवोर्मध्ये जपित्वा पश्चात् परिव्राजकमभिमुखीकृत्य दशहोतृभिरुपस्थानं कुर्यात् । ब्राह्मण एक होता । स यज्ञः । मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । यज्ञश्च मे भूयात् । अग्निर्द्विहोता । स भर्ता । स म ददातु प्राजां पशून् पुष्टिं यशः । भर्त्ता च मे भूयात् । पृथिवी त्रिहोता । स प्रतिष्ठा । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्रतिष्ठा च मे भूयात् । अन्तरिक्षं चतुर्होता स विष्टं स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः ।

यदि कुत्ता सियार आदि मांसभोजी जानवरों के द्वारा ऊपर उखाड़कर लाया जाता है तो उस प्रदेश में अनावृष्टि आदि उत्पाद जनक दोष उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये सन्यस्त पुरुष के शान्त शरीर का संस्कार करने के लिये जो अधिकारी है उस अधिकारी पुरुष के द्वारा शरीर का दाह संस्कार ही किया जाना चाहिये । क्योंकि चिता की आग में शान्त शरीर को जलाने का वेद एवं धर्मशास्त्र में विधान किया गया है भस्म रूपमें शरीर की अन्तिम परिणति होती है इस कथन के कारण भी दाह संस्कार में शव के शरीर के तत्त्वों का अपने-अपने कारणों में विलय हो जाता है और धर्म का भी अनुपालन होता है । इन विशेष तत्त्वों का विवेचन कर श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय सिद्धान्तानुयायी श्रीवैष्णवों का यही सिद्धान्त है । इसलिये विकृत परिणाम द्वारा जमीन में गाड़ना अथवा जल प्रवाह से अपेक्षाकृत परिणाम अग्नि संस्कार का औचित्य सभी विवेकी पुरुषों के द्वारा मानना चाहिये । श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष के शरीर का दाह कर देने के पश्चात् तत्काल ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के तत्त्वों का साक्षात् अपने-अपने कारणों में विलय होता है एवं शान्त शरीर का अनादर भी नहीं होता है । जमीन में खोदकर गाड़ने से शरीर का विकार उत्पन्न होने पर उसमें दुर्गन्धि आदि उत्पन्न हो जाते हैं । तथा कुत्ते श्रृगाल आदि मांसभोजी प्राणियों के द्वारा मुर्दा को उखाड़ देने पर शरीर का अनादर भी होता है । जल समाधि देने पर तो जल में शान्त शरीर के सड़ने से अनेक प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न होते हैं । यदि कहीं पर सम्प्रदाय परम्परागत या लोक व्यवहार इसप्रकार का है कि जल समाधि और जमीन में गाड़ना परम्परागत व्यवहार है इसलिये यह सदाचार है ऐसा कहें तो वह ठीक नहीं क्योंकि वेद और धर्मशास्त्र से अविरुद्ध यदि परम्परागत या लोकव्यवहार हो तभी उस व्यवहार का सदाचार के रूपमें परिगणन किया जाता है । क्योंकि शास्त्रों का यह

विष्टाश्च मे भूयात् । वायुः पञ्चहोता । स प्राणः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्राणश्चमे भूयात् । चन्द्रमाः षड्ढोता । स ऋतून् कल्पयति । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । ऋतवश्च मे कल्पन्ताम् । अन्नं सप्तहोता । स प्राणश्च प्राणः स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । प्राणस्य च मे प्राणे भूयात् । द्यौरष्टहोता । सोऽनाधृष्यः । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । अनाधृष्यश्च भूयासम् । आदित्यो नव होता । स तेजस्वी । स मे ददातु पशून् पुष्टिं यशः । तेजस्वी च भूयासम् । प्रजापतिर्दशहोता । स इदं सर्वम् । स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः । सर्वं च मे भूयात् स्वाहा इति च । अग्निर्होता इत्यनुवाकेन च यतिं स्पृष्ट्वा उपस्थाय तुषाग्निना दहेत्→

ईशावास्योपनिषदि उक्तम्-

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्
ॐक्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥

सामान्यतः विवेचने कृते प्रतीयते यत्

परासु प्राप्तपञ्चत्वपरेतप्रेतसंस्थिताः मृतप्रमीतौ त्रिष्वेते-इति मृत्युपर्यायवाचकाः शब्दा विद्यन्ते ।

एषु प्राप्तपञ्चत्वमित्यस्य प्राप्तम् पञ्चत्वं येनेति व्युत्पत्त्या ज्ञायते यत् पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मकम् पाञ्चभौतिकमिदं शरीरम् आत्मनि शरीरान्निर्गते पञ्चभूतानि पञ्चसु क्रमेण विलीयन्ते । आत्मनि स्थिते एव तेषां स्थितिर्भवति।

उद्घोष है कि धर्म तत्त्व को जानने की इच्छा करनेवाले विवेकी पुरुषों के लिये सवसे वड़ा प्रमाण वेद है। इस कथन के अनुसार जिस व्यक्ति का जो धर्म है उसके जिस धर्म का वेद और शास्त्र के द्वारा विधान किया गया है उसका संस्कार वेदशास्त्र के अनुकूल ही किया जाना चाहिये । वेदशास्त्र के विधान का उल्लंघन कर विपरीत संस्कार नहीं किया जाना चाहिये । "भस्मान्तं शरीरम्" इस वेद वचन के द्वारा शरीर का अन्तिम परिणामं भस्मरूप में विधान किया गया है। इसलिये शान्त विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का अग्नि संस्कार द्वारा अग्निदाह करना ही परम कल्याणकारी विधान है। और यही वेद का एवं जगदाचार्य परमपूजनीय आनन्दभाष्यकार श्रीमान् रामानन्दाचार्यजी का सिद्धान्त है। यह विषय ऋग्वेद के दशम मण्डल में विस्तार के साथ कहा गया है जो वेद मन्त्र

वैज्ञानिकानामयं निश्चितः सिद्धान्तो विद्यते यत् संसारे यानि तत्वानि वर्तन्ते, तेषां जगति अन्यूनानधिका स्थितिर्भवति । कस्मिंश्चिदाधारे क्षीयते इतरत्रवर्धते, किन्तु इतरस्य प्रादुर्भावो न भवति । सर्वेषामेव प्राणिनां शरीरात् प्राणवायौ निर्गते पञ्चत्वस्यावाप्तिर्जायते । कृमिविड् भस्मान्तानि शरीरिणां शरीराणि भवन्ति । यथा कस्यचित् शरीरस्य संस्कारको न भवति चेत् तस्य शरीरं जलचरा नभचराः श्वापदा वा खादन्ति तदा विष्ठारूपेणावसानम् । खाते निक्षिप्य मृत्तिकयापूरिते कृमिरूपेणावसानम् । अग्निनादग्धे भस्मरूपेणावसानम् । परं सर्वत्र पार्थिवस्य तत्त्वस्य पृथिव्यां लयो वायव्यस्य वायौ, जलीयस्य जले तैजसः तेजसि, आकाशीयस्य चाकाशे विलयो भवति, इत्यत्र न कश्चिद् भेदः । किन्तु साधुषु शरीरत्यागेषु समाजे त्रिविधा व्यवस्था दृश्यते ।

कश्चित् मृतं शरीरं जलसमाधिं करोति । अपरः भूमिं खनित्वा तत्र शरीरं निक्षिप्य मृत्तिकादिभिः पूरयति । किन्तु अन्यत्र यस्य बान्धावाः भवन्ति ते ससत्कारं चितायां स्थापयित्वा काष्ठादिभिः शरीरं भस्मसात्कुर्वन्ति । यस्य यो पारम्परिकः व्यवहारः प्रचलति तं व्यवहारं परित्यक्तुं तात्विकं विचारं वा कर्त्तुं नाभिलषति । किन्तु भारते वर्षे वैदिकधर्मानुयायिनां कृते वेदविहिता व्यवस्था विशुद्धतमा श्रेष्ठा च इत्यत्र नास्ति केषाञ्चित् प्रतिभाजुषां विदुषां विमतिः विप्रतिपत्तिर्वा । जगति यस्मिन्कस्मिन् देशे धर्मेषु वा धर्मशास्त्रीयाः याः काश्चन व्यवस्थाः भवन्ति ताः देशकालपात्राश्रिताः एव । यथा ध्रुवप्रदेशादिषु हिमातिरिक्तं किमपि साधनं न भवति अतः तत्र शरीरसंस्काराय हिमे निखननातिरिक्तन्नास्ति कश्चन उपायः । अतः तत्र स एव धर्मः । सामुद्रिकेषु द्वीपेषु काष्ठाभावे जलसमाध्यतिरिक्तं उपायान्तरो न भवति अतस्तत्रत्यो जलस

"मैनमग्नेय विदहोमाभिशोचो" से लेकर "बहैनं सुकृतामुलोकम्" पर्यन्त विस्तार पूर्वक शान्त देह के अन्तिम संस्कार के सम्बन्ध में अग्नि संस्कार करने का वैदिक विधान होने में प्रमाण है । इसलिये जो अग्न्याधान नहीं करनेवाला पुरुष है उस संन्यासाश्रमी पुरुष के शरीर के शान्त हो जाने पर ब्राह्मण पुरुष उसके विद्यमान कलेवर को अग्नि से दाह संस्कार करे । तुष अर्थात् चावल का भूसा उसमें आग जलाकर श्रीवैष्णव संन्यासी के शरीर का अन्तिम संस्कार करने के लिये गाँव से बाहर

माधिरेव धर्मः किन्तु भारतेऽस्मिन् वर्षे त्रिविधोऽपि अन्तिमः संस्कारः शरीरस्य सम्भवति । साधनान्यपि पर्याप्तानि भवन्ति ।

अत्रेदं विचार्यते यत् यत्र दीर्घकालपर्यन्तमहर्निशं वृष्टिर्भवति । प्रदेशः जलप्लावितः इन्धनस्य च सर्वथा अभावः तत्र देशकालजनितकाठिन्य जननात् अग्निना देहसंस्कारो न भवति चेत् न कश्चिद्दोषः । अन्यत्र तु धर्मशास्त्रीया व्यवस्था स्वीकार्या एव उक्तवान् चात्र मनुः-

मृतं शरीरमुत्सृत्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ।
अरण्यो काष्ठवत् त्यक्त्वा त्रपेयुस्त्र्यह मेव च ॥

नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥

याज्ञवल्क्यश्चाह-

अरण्ये काष्ठवत् त्यक्त्वा इत्यत्र ऊन द्विवार्षिकं निखनेत् इति व्यवस्थापयति।

ब्रह्मपुराणे चोक्तम्-

पतितानां च दाहस्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः ।
नाश्रुपातश्च पिण्डो वा कार्याश्राद्धादिकं क्वचित् ॥

एतानि पतितानान्तु यः करोति विमोहितः ।
कण्ठोदकक्रियाः कृत्वा तप्तकृच्छ्रेन शुद्ध्यति ॥

अन्यत्रावलोक्यते ज्ञाननिष्ठानां संन्यासिनां शरीरस्य कृते लवणेन सह निखननं विधीयते । तत्र निखननोत्तरं कथञ्चिद्दैवात् यदि स्वापदादिभिः उत्खननं भवति तदा तत्र प्रदेशेऽनावृष्ट्यादिकाः दोषाः प्रादुर्भवन्ति । तस्मात् यतः शरीरस्य संस्काराय योऽधिकारी तेन शरीरस्य दाहसंस्कार एव विधेयः । उत्तर दिशा या पूर्व दिशा में शरीर को ले जाय । जबतक शरीर भस्मसात् नहीं हो जाय तबतक शान्त संन्यासी के शरीर को तुष की आग से जलावे । निरग्नि श्रीवैष्णव

चितागनौ शवदाहस्य वेदे धर्मशास्त्रे च विधानात् । भस्मान्तं शरीरमित्युक्तेश्च कृते दाहसंस्कारे शवस्य स्व-स्व कारणे विलयो भवति । धर्मस्य चापि अनुपालनं भवति इति श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीयानां श्रीवैष्णवानां सिद्धान्तः । तेन विकृतपरिणामद्वारा निखननाज्जलप्रवाहाद्वा अविकृत परिणामस्य अग्निसंस्कारस्य औचित्यं सर्वैरेव स्वीकर्त्तव्यम् । यतः शरीरस्य दाहे कृते साक्षादेव पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां तत्त्वानां स्व-स्व कारणेषु विलयो भवति शवस्य च अवमानना अपि न भवति । "इदं परिदृश्यमानं प्रमास्पदतया प्रतीयमानं भोगसाधनीभूतं रमणीयं शरीरं विशरणस्वभावं वपुः कर्माधीनं वपुः भस्मान्तं भस्म अन्तः चरमः परिणामो यस्य तादृशं दाहसंस्कारे सति भस्मरूपं भवतीत्यर्थः" इति भाष्यकारोक्तेश्च भस्मान्त सिद्धान्तमेवादर्तव्यं श्रीसम्प्रदायानुयायिभिः । भूमौ निखनने शरीरस्य विकृतिवशात् दौर्गन्ध्यादिकमुत्पद्यन्ते कुकुरश्रृगालादिभिश्च उत्खनने कृते अनादरः अपि भवति । जलसमाधौ तु जलेदोषाः उत्पद्यन्ते । श्रुतिस्मृतिभ्याम विरुद्धस्यैव पारम्परिकस्य लोकव्यवहारस्य सदाचारत्वेन परिगणनात् "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" इत्युक्तेश्च । यस्य यो धर्मः धर्मशास्त्रेण वेदेनचाभिहितः तस्य संस्कारः तथैव विधेयः । वेदेन भस्मान्तस्य शरीरस्य विधानात् शान्तस्य यतिदेहस्य अग्निदाहः एव परमश्रेयस्करः । अयमेव च वेदस्य जगदाचार्यस्य श्रीरामानन्दाचार्यस्य सिद्धान्तः । अक्तञ्च ऋग्वेदे दशमेमण्डले-

मैनमग्नेविदहोमाभिशोचोमास्यत्वचं चिक्षिपोमाशरीरम् । यदाश्रृतं कृणवोजातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात्पितृभ्यः श्रृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात्पितृभ्यः । यदा गच्छत्यसुनीति मेतामथा देवानां वशनीर्भवति ॥ सूर्यचक्षुर्गच्छतु वातमात्मां द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा । अयो वा गच्छ

संन्यासी के शरीर का दाह संस्कार करना चाहिये एवं उसके पुत्रादि श्राद्ध पिण्डोदक आदि क्रिया करे । इन धर्मशास्त्रीय वचनों का एवं प्रमाणों का अनुरोध करके श्रीवैष्णणव संन्यासियों के तथा पञ्चसंस्कार सम्पन्न श्रीरामानन्दीय सभी विरक्त सन्तों के शरीर का अग्नि संस्कार ही करना चाहिये । तत्पश्चात् जैसा कि श्रीसम्प्रदाय में परम्प-

यदि तत्र ते हिममोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः अजोभागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ऋग्वेद-१० मण्डल । तस्मात्-

निरग्नीनां दहेद्विप्रः संस्थितानां कलेवरम् ।
तुषाग्निमात्रमुत्पाद्य संस्कारार्थं यतेर्हरेत् ।
तुषाग्निना दहेद्देहं यावद्भस्मी भविष्यति ।
दहनं तस्य कर्त्तव्यं श्राद्धं पिण्डोदकक्रिया: ।

इत्यादिप्रमाणान्यनुरुद्ध्य यतीनां देहस्य अग्निसंस्कारः एवकर्त्तव्यः । पञ्चसंस्कारपूर्वकगृहीतविरक्तदीक्षाणां समेषां श्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णवानामग्निसंस्कार एव कर्तव्य इतिविवेकः । तदुत्तरं यथा श्रीसम्प्रदायं साधुभिः श्रीसाकेतोत्सवं कर्त्तव्यम् ॥३०॥

इति आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां यतिसंस्कारविधिनामकः प्रकरणः परिपूर्णम् । शुभं भूयात् ।

☬ पञ्चमाश्रमनिषेधः ☬

मनुना अभिहितम्-मनुस्मृतेः द्वितीयाध्याये→

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

रागत व्यवहार है तदनुसार विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासियों के हेतु श्रीसाकेत यात्रोत्सव विधान करना चाहिये ॥३०॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णवसंन्यास मीमांसा में यतिसंस्कार विधि नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☬ पञ्चम आश्रम का निषेध ☬

मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में धर्मशास्त्र का स्वरूप के द्वारा सुस्पष्ट रूपसे कहा गया है संसार में सभी धर्मों का मूल आधार वेद है तथा वेद के जाननेवाले विद्वानों का

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

याज्ञवल्क्येन चोक्तम्-
विहितस्याननुष्ठानात् निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

वेदानुकूल विवेचनात्मक संस्मरण स्वरूप धर्मशास्त्र है तदनुरूप वेदज्ञों का आचरण एवं महापुरुषों का आचरण तथा वेदानुयायी पुरुषों का आत्म संतोष ये सभी धर्म का मूल है। जो कोई किसी भी व्यक्ति का धर्म मनुस्मृतिकार मनु के द्वारा प्रतिपादन किया गया है वे सभी धर्म वेद में कहे गये हैं। क्योंकि वेद समस्त ज्ञानों से परिपूर्ण है। वेद, धर्मशास्त्र महापुरुषों का सदाचार एवं स्वयं अपना हित ये चार प्रकार के धर्म के लक्षण साक्षात् कहे गये हैं। धर्मशास्त्रकार याज्ञवल्क्य के द्वारा भी कहा गया है कि जो वेदशास्त्र के द्वारा विधान किया गया है उसकी अनुपालना नहीं करने से और जिसका वेद के द्वारा निषेध किया गया है उसका सेवन करने से तथा अपने इन्द्रियों का नियमन नहीं करने से मानव आत्म पतन को प्राप्त करता है। अतः मानवों को वेद, धर्मशास्त्र, पुराण आदि वेदानुप्राणित शास्त्रों के अनुरूप आचरण करना चाहिये।

वेद में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन आश्रमों के भेद से चार आश्रम निरूपित किये गये हैं। जिसप्रकार संन्यासाश्रम में दीक्षा ग्रहण के प्रसङ्ग में जिस दिन वैराग्य हो जाय उसी दिन परिव्रज्या दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परम वैराग्य होने पर ब्रह्मचर्याश्रम से ही अथवा गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से जिस प्रकार की उत्कटवैराग्योत्तर इच्छा हो उसी प्रकार प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिये। प्रव्रज्या शब्द संन्यास का पर्याय वाचक है। जैसे कि परिव्राट् संन्यासी को कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति में पुत्र पौत्रादि सगा सम्बन्धी एवं धन धान्य सभी को छोड़कर आश्रमान्तर में चला जाता है उसको परिव्राट् कहते हैं। जैसे कि यस्य चानादरे इस पाणिनीय सूत्र के उदाहरण में रुदतां रुदत्सु वा प्राव्राजीत् यह उदाहरण देकर इसका अर्थ श्रीभट्टोजिदीक्षित के द्वारा संघटित किया गया है कि रोते हुये पुत्र पौत्रादि की उपेक्षाकर परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर लिया। धर्मशास्त्रों में भी चार आश्रम कहे गये हैं। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, और

वेदे ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यासाश्रम भेदेन चत्वारः आश्रमाः प्रतिपादिताः । यथा प्रव्रज्याग्रहणप्रकरणे यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेत् । ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा यथा कामं प्रव्रजेत् । प्रव्रज्याशब्दः संन्यासपर्यायः । यथा परिव्राडित्यस्य व्युत्पत्तौ परित्यज्य पुत्र-पौत्रादिकं व्रजति इति परिव्राट् । यथा यस्य चानादरे इति सूत्रस्योदाहरणे रुदतां रुदत्सु प्राव्राजीत् तस्य च अर्थः भट्टोजिदीक्षितेन कृतः रुदन्तं पुत्रपौत्रादिकं परित्यज्य सन्यस्तवानित्यर्थः । स्मृतिष्वपि चत्वारः आश्रमाः प्रोक्ताः ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ संन्यासभेदात् ।

"शास्त्रमेव मतं प्राज्ञैर्धर्मतत्त्वप्रकाशकम् ।
चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।
संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम्"
इति च श्रीवशिष्ठसंहितायामाश्रमधर्मनिरूपणे ।

सन्यस्त उसीप्रकार वेद भी ऋग्यजुस्साम अथर्व भेद से चार प्रकार के हैं और उन-उन वेदों का अलग-अलग लक्षण भी है जैसे कि जिस वेद में अधिकतम ऋचाओं का प्रयोग हैं उसे ऋग्वेद कहते हैं जिसमें अधिकतम गद्यभाग हैं उसे यजुर्वेद कहते हैं जिसमें गीत का भाग अधिक है उसे सामवेद कहते हैं तथा जिसमें उपर्युक्त तीनों ही मिलेजुले हैं उसे अथर्ववेद कहते हैं। वेदों से समर्थित आश्रमों में निवास करनेवाले प्राणियों के जिस किसी आश्रम में उत्कट वैराग्य का प्रादुर्भाव हो जाता है उसी आश्रम से उत्कट वैराग्य प्राप्त पुरुष संन्यास दीक्षा को ग्रहणकर लेता है। अर्थात् संन्यास दीक्षा धारण करने में सर्वप्रथम उत्कट वैराग्य होना अत्यालश्यक है। परम वैराग्य के अभाव में संन्यास दीक्षा ही नहीं हो सकती है। और जिसने संन्यास दीक्षा को प्राप्त कर ली है उस संन्यास ग्रहण संस्कार से सुसंस्कृत पुरुष का आश्रम संन्यासाश्रम कहा जाता है। संन्यासी शब्द का पर्याय वाचक शब्द भिक्षुक शब्द भी है। भिक्षु का अर्थ परम विरक्त संन्यासी पुरुष अर्थ है क्योंकि अमरकोष में संन्यासी शब्द के पर्यायवाचक शब्द लिखते हुये भिक्षु परिव्राट् कर्मन्दी, पाराशर्य और मस्करी ये सभी शब्द लिखे हैं अतः ये पाँच संन्यास के पर्यायवाचक शब्द हैं। उस संन्यासाश्रम में प्रवेश की दीक्षा प्राप्ति से पहले तीव्र वैराग्य की मुख्य कारणता है। क्योंकि परम वैराग्य की अस्थिरता होने पर महान् दोष एवं

तथैव वेदाः अपि चत्वारः ऋग्यजुसामाथर्वभेदात् । अस्ति च तेषां पृथग्लक्षणम् । वेदानुमतेष्वाश्रमेषु वसतां प्राणिनां यस्मिन्कस्मिन्नप्याश्रमे उत्कटवैराग्यस्योदयो भवति तस्मादेवाश्रमात् जातवैराग्यः पुरुषः परिव्रज्यां गृह्णाति । प्राप्तपारिव्रज्यस्य पुरुषस्य आश्रमः संन्यासाश्रमः इत्युच्यते । भिक्षु रपि संन्यासी शब्दस्यैव पर्यायः । "भिक्षुं परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्यपि मस्करी" इति अमरकोषे तस्य संन्यासिना पञ्चपर्यायाः उक्ताः । तत्र संन्यासदीक्षायां तीव्रवैराग्यस्य मुख्या कारणता अस्थिरवैराग्यस्य आश्रमान्तर प्रवेशे आरूढपतनात्मको दोषः भवति । तेन स पतितः उच्यते इति पूर्वं सविस्तरं प्रतिपादितम् । वेदस्य ऋक् सामयजुषा विभाजने कृते त्रयीनाम विद्वद्भिरुच्यते । किन्तु इतिहासपुराणानि पञ्चमोवेद उच्यते । इति कथनेन नहि इतिहासादीनां वचनेनैव वेदत्वमायाति, किन्तु वेदानुमतत्वेन तत्तुल्यमहत्व प्रत्यवाय शास्त्रों में कहा गया है । क्योंकि वैराग्य से विचलित होकर यदि किसी कारणवश व्यक्ति का अन्य आश्रम में प्रवेश होता है तो वह व्यक्ति आरूढ़ पतित कहा जाता है । अर्थात् सर्वोन्नत आश्रम में प्रवेशकर गिरा हुआ व्यक्ति जाना जाता है । आरूढ़ पतन एक महान् दोष है इसलिये वह पतित कहा जाता है यह विषय पहले ही विस्तार के साथ प्रतिपादन किया जा चुका है ।

वेद का ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के रूपमें विभाजन किये जाने पर तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा त्रयी यह नामकरण किया गया । किन्तु इतिहास (श्रीमद्वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत) एवं अठारह पुराणों को पञ्चम वेद के रूपमें कहा गया है कि इतिहास, पुराण पाँचवाँ वेद है । इस पञ्चम वेदत्व प्रतिपादन के द्वारा वास्तविक में इतिहास पुराण आदि पाँचवाँ वेद ही है यह सिद्ध नहीं होता है लेकिन वेद के सिद्धान्तों से समर्थित होने के कारण जैसा धार्मिक व्यवस्था के लिये वेद का महत्व लोक व्यवहार एवं शास्त्रों में है उसी प्रकार इतिहास पुराण का भी अत्यन्त महत्वशाली होना सिद्ध होता है। उसीप्रकार नाट्य शास्त्राचार्य भरत मुनि के द्वारा विरचित नाट्य शास्त्र में कहा गया कि नाट्य शास्त्र पाँचवाँ वेद है । इस वस्तु को उदाहरण प्रत्युदाहरण देकर विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया गया कि संगीत सामवेद से लिया तो अमुक वस्तु यजुर्वेद से लिया तो इसतरह नाट्य शास्त्र का ग्रन्थकार ने वेदत्व प्रतिपादन किया । किन्तु ग्रन्थकार के कहने

शालिता एव, तथैव भरतमुनेः नाट्यशास्त्रेनाद्यं पञ्चमं वेद इति सविस्तरं प्रतिपादितम् तेन नाट्यशास्त्रस्य वेदत्वं न साधितम्भवति, किन्तु गौणी शुद्धाभेदेनालङ्कारशास्त्रे द्विधालक्षणा भवति । यथा 'सादृश्येतर सम्बन्धाशुद्धास्तां सकला अपि । सादृश्यात्तुमता गौण्यस्तेन षोडशभेदिता' इति वत् यथा राजकुमारेषु तत्सदृशेष्वन्येषु गच्छत्सु अमी राजकुमाराः गच्छन्ति, इत्थं तत्सादृश्यात् तस्य आरोपो विधीयते । एवमेव 'नाट्यं पञ्चमं वेदः' इत्युक्ते वेदवत् सर्वलोकोपकारकमिति प्रतीयते । पाञ्चरात्रागम श्रीव-

मात्र से उसमें वेदत्व सिद्ध नहीं हो जाता है किन्तु वेद सदृशत्व तो सिद्ध ही होता है जैसे की अलंकार शास्त्र में लक्षणावृत्ति का स्वरूप प्रतिपादन करने के पश्चात् गौणी शुद्धा भेद से लक्षणा दो तरह की होती है यह कहा गया। सादृश्य सम्बन्ध को छोड़कर कार्यकारण भाव, बोद्ध्य बांधक भाव, जन्य जनक भाव आदि सम्बन्ध शुद्धा लक्षणा शब्द से कहे गये। किन्तु जहाँ पर सादृश्य सम्बन्ध होता है उसे गौणी लक्षणा कहते हैं और शुद्धा गौणी भेद से भेद करने पर लक्षणा के सोलह भेद होते हैं। यह जैसे औपचारिक प्रयोग होता है उसी प्रकार इतिहास अथवा नाट्यशास्त्र पाँचवाँ वेद है यह गौणी लक्षणा का प्रयोग है।

जैसे कि राजकुमार एवं राजकुमार के समान अन्य कुमारों को राजकुमार के साथ जाने पर ये सभी राजकुमार जा रहे हैं इसप्रकार का राजकुमार के सादृश्य होने के कारण व्यवहार में वाक्य का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर इन कुमारों में परस्पर सादृश्य सम्बन्ध होने के कारण राजकुमारत्व नहीं होने पर भी राजकुमारत्व का आरोप होता है इसलिये अराजकुमार में भी राजकुमार का व्यवहार होता है। इसीप्रकार प्रकृत में नाट्यशास्त्र पञ्चम वेद है, यह अवेदत्व होने पर भी वेद के समान लोक रञ्जन के माध्यम से हितकारी होने के कारण सादृश्य सम्बन्ध से वेदत्व व्यवहार होता है। किन्तु पञ्चमत्व तो सिद्ध नहीं होता है।

श्रीभरद्वाज मुनि के द्वारा वशिष्ठ संहिता में श्रीवशिष्ठ मुनि के प्रति प्रश्न किया जाता है। श्रीवैष्णवों के कितने आश्रम होते हैं-ऐसी जानने की इच्छा भारद्वाज मुनि के द्वारा अभिव्यक्त किये जाने पर महर्षि श्रीवशिष्ठजी के द्वारा कहा जाता है कि-

स्वभाव से ही शास्त्र तत्त्व का मनन करनेवाले श्रीवैष्णवों के लिये तत्वज्ञानी विद्वान् पुरुषों के द्वारा, धार्मिक रहस्यभूत तत्वों का प्रकाशन करनेवाला तत्व शास्त्र ही है

शिष्ठसंहितायां भारद्वाजेन श्रीवशिष्ठं प्रति श्रीवैष्णवाश्रमभेदजिज्ञासा यामभिव्यक्तायां श्रीवशिष्ठेन महर्षिणाभिहितम् यत् प्राज्ञैर्धर्मतत्वप्रकाशकम् शास्त्रमेव मतम् मननशीलानां श्रीवैष्णवानां कृते-

चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।

संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम्,

इति वचनेन चतुर्णामेवाश्रमाणां संख्याप्रतिपादिता । तत्र सात्विकं भक्ष्यं भुञ्जानो ब्रह्मचारीद्विजो गुरुसेवापरायणो द्वादशाब्दं गुरुकुलेवसन् ब्रह्मचर्यं पालयेत् ।

आयुषश्च द्वितीयार्धं कृतदारो गृहीभवेत् ।

आयुषश्च द्वितीयार्धेऽवशिष्टे वानप्रस्थता ।

चतुर्थांशेऽवशिष्टे तु प्रव्रज्याभिहितायुषः ।

यदाचोत्कटवैराग्यं प्रव्रज्येयं श्रुतौ तदा ॥

ऐसा स्वीकार किया गया है। अतः श्रीवैष्णवों के लिये शास्त्रों में चार प्रकार के आश्रम श्रीवैष्णव महापुरुषों के लिये प्रतिपादन किये गये हैं। संन्यासाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, गृहस्थाश्रम और ब्रह्मचर्याश्रम ये चार आश्रम हैं। इस महर्षि श्रीवशिष्ठजी के वचन द्वारा चार प्रकार के ही आश्रम की संख्या वतायी गयी है। अर्थात् पाँचवाँ आश्रम नहीं बताया गया है। उन आश्रमों में जिस आश्रम में सत्व गुणानुरूप आहार विहार का उपभोग करते हुए ब्रह्मचारी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज़ अपने आचार्य गुरु की सेवा समर्पित भाव से करता हुआ बारह वर्ष पर्यन्त गुरुकुल में निवास करता हुआ ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन करता है, वह ब्रह्मचर्याश्रम है। "शतायुर्वै पुरुषः" एक सौ वर्ष मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन होता है। इस नियम को आधार मानकर आयुष्य के द्वितीय भाग अर्थात् २५ वर्ष की अवस्था के पश्चात् पचास वर्ष की अवस्था पर्यन्त के आयुष्य भाग में अपने वर्णाश्रमानुकूल कन्या के साथ विवाह करके गृहस्थाश्रमी होवे। आयुष्य के द्वितीय भाग के वाद तृतीय भाग अर्थात् ५० वर्ष के आयुष्य के वाद ७५ पचहत्तर वर्ष की अवस्था पर्यन्त वानप्रस्थ आश्रम में विताना चाहिये। आयुष्य का चतुर्थांश अवशिष्ट रहजाने पर जव उत्कट वैराग्य उत्पन्न हो जाय तव संन्यासाश्रम की दीक्षा ग्रहण करना चाहिये इसप्रकार वेद में प्रतिपादन किया है। यहाँ श्रुति से तात्पर्य है कि "वेद प्रणिहितो धर्मः,

तत्र गुरौ ब्रह्मणि मन्त्रे च श्रद्धालवः सत्याहिंसापरायणाः ब्रह्मचर्यपराः श्रीसीतारामप्रपन्नाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः परोपकारिणः संन्यासिनो भवन्ति । ब्रह्मचर्यव्रतं रक्ष्यं गृहस्थान्याश्रमत्रये । एतेन चत्वार एव आश्रमा श्रीसम्प्रदायस्य पञ्चमाचार्यब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठस्याप्यभिमत इति ।

विषयेऽस्मिन् कैश्चित् महानुभावैः साटोपं प्रतिपाद्यते यत् "विरक्तः श्रीवैष्णवाश्रमः पञ्चमः आश्रमः" इति । आश्रमेऽस्मिन् सर्वे भगवत् प्रपन्नत्वात् सर्वे अच्युतगोत्रिणो भवन्ति, वर्णाश्रमाचारविहीनाश्च । वचनं चेमं नारदपाञ्चरात्रोक्तेन कथनेन प्रमापयन्ति, तद्यथा-

अधर्मस्तद्विपर्ययः" वेद द्वारा विहित कार्यकलाप धर्म है, वेद विरुद्ध कार्यकलाप अधर्म है । उस संन्यासाश्रम में निवास करता हुआ मन्त्रोपदेष्टा गुरु, परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी एवं ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र इन तीनों के प्रति समान रूपसे परम श्रद्धा सम्पन्न होता हुआ, सत्य एवं अहिंसा परायण रहकर ब्रह्मचर्य व्रत परिपालन तत्पर श्रीसीतारामजी का शरणागत तापपुण्ड्र नाम मन्त्र माला स्वरूप पञ्चसंस्कार से सुसंस्कृत परोपकार व्रत परायण श्रीवैष्णव संन्यासी समुदाय होते हैं । क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि गृहस्थाश्रम को छोड़कर अन्य सभी तीनों आश्रमों में ब्रह्मचर्य व्रत परिपालन धर्मका संरक्षण अवश्य करना चाहिये । इन वस्तुओं का प्रतिपादन करने से सिद्ध होता है कि चार आश्रम महर्षि श्रीवशिष्ठजी को भी स्वीकार है । अर्थात् इसके अतिरिक्त आश्रम उनको अभीष्ट नहीं है ।

इस विषय में किन्हीं महाशयों द्वारा वडे विस्तार एवं आरोप पूर्वक प्रतिपादन किया जाता है कि "विरक्त श्रीवैष्णव का आश्रम पाँचवाँ आश्रम है । यह पञ्चम आश्रम है अतः सभी वैष्णवगण भागवत कहे जाते हैं क्योंकि भगवत् प्रपन्न होते हैं । इसलिये ये सभी अच्युत गोत्रवाले होते हैं । और इनका कोई भी वर्ण अथवा आश्रम का आचार विचार नहीं होता है । और इस वात को नारद पञ्चरात्र के वचनों से प्रमाणित करते हैं । वह जैसे कि-ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चार प्रकार के आश्रम होते हैं । मुझ परमात्मा का विशेष रूपसे आलम्बन करना यह पाँचवाँ आश्रम है । कहीं क्षेपक में पाँचवाँ वैष्णवाश्रम है ऐसा भी पाठ उपलब्ध होता है यह किसी ने अपने शास्त्र विरुद्ध लक्ष्य सिद्ध करने हेतु प्रक्षेप किया है स्पष्ट ही है । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और संन्यास इन वर्णाश्रमों का

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
चत्वारो ह्याश्रमा एते पञ्चमो मद्व्यपाश्रयः ॥
(पञ्चमो वैष्णवाश्रमः इत्यपि पाठोऽस्तीति)
प्रायिकोऽयं पाठभेदप्रदर्शनं स्वलक्ष्यसाधनमात्र परकत्वात्-
वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः ।
वर्णाश्रमविहीनाश्च तिष्ठन्ति श्रुति मूर्धनि ॥
तत्र च स्कन्दपुराणोक्तं दत्तात्रेयं प्रति पिङ्गलनागवचनमुदाहरन्ति→
किञ्चित् पृच्छामि भो स्वामिन् त्वं मम क्षन्तुमर्हसि ।
कोऽयं तवाश्रमः केन गुरुणा कथितः पुरा ॥

अभिमान होने से व्यक्ति वेद के अधीन होने के कारण वेद का दास मानव हो जाता है । जो व्यक्ति वर्णाश्रम से विहीन है अर्थात् वर्णाश्रम का बन्धन जिसे नहीं है वह वेद के माथे पर चढकर रहता है । और इसमें स्कन्दपुराण में कहा गया दत्तात्रेय के प्रति पिङ्गल नाग का कथन उदाहरण स्वरूप में प्रस्तुत करते हैं-

हे स्वामिन् मैं आपसे कुछ प्रश्न करता हूँ मेरे प्रश्न करने की धृष्टता को आप क्षमा कर सकते हैं । प्रश्न मेरा यह है कि-आपका यह कौन सा आश्रम है, इस आश्रम का किस के द्वारा उपदेश किया गया है । इस आश्रम के उपदेष्टा गुरु कौन हैं । और वस्त्र विहीन यह युवती आपके गोद में वैठी हुई है तथा आप भी दिगम्बर अवस्था में विद्यमान हैं । यह मार्ग किसके द्वारा बताया गया है यदि आप राज्य आदि की कामना से विहीन हैं तो वेद, शास्त्र औंर पुराणों में प्रसिद्ध ये चार ही आश्रम सुने गये हैं शास्त्रों में उन चार आश्रमों के अतिरिक्त कोई अन्य आश्रम नहीं है ऐसा वेद शास्त्र के विद्वानों के मुख से सुना गया है । दत्तात्रेय उत्तर देते हैं-

हे मुनि पुङ्गव आपका पूर्वोक्त कथन सत्य ही है जो आपके द्वारा चार प्रकार के आश्रम बतलाये गये हैं उन आश्रमों से अतिरिक्त ही यह मेरा पाँचवाँ आश्रम है । यह जड़चेतनात्मक सम्पूर्ण दृष्टिगोचर होता हुआ संसार अपने स्वरूप से अभिन्न रूपमें जो देखता है जो अतिकल्प के द्वारा समस्त जगत को आत्म स्वरूप में अवलोकन करता है उस ज्ञानी पुरुष के लिये यह पञ्चम आश्रम है । जो क्रोध, लोभ, मोह आदि आन्तरिक बन्धनों को काटकर समस्त चराचर जगत के प्राणियों के बीच में सम्यक् प्रकार से रहता

दिगम्बरेयं युवती तवाङ्के त्वं दिगम्बरः ।
मार्गकेनोपदिष्टोऽयं यदि राज्यादलालसः ॥
वेदशास्त्रपुराणेषु श्रुताश्चत्वार एव ते ।
आश्रमस्त्वपरोनान्यः तेभ्यः कश्चिन्मया श्रुतः ॥

卐 दत्तात्रेय उवाच 卐

सत्यमेतन्मुनिश्रेष्ठ ये चत्वारस्त्वयोदिताः ।
आश्रमास्तेभ्य एवायं पञ्चमोहि ममाश्रमः ।
अभिन्नमात्मना रूपं जगदेतत् चराचरम् ।
अतिकल्पेन यः पश्येत् तस्यायं पञ्चमाश्रमः ।
यः क्रोधादीनि च च्छित्वा सर्वभूतेषु संस्थितः ।
वैराग्याश्रितचेताश्च तस्यायं पञ्चमाश्रमः ।
आश्रमेषु चतुर्ष्वेवमस्ति चैतन्मुने मम ।

श्रीमदग्रदासकृत अष्टयामे चोक्तम्-

वैष्णवः पञ्चमोवर्णः वैष्णवः पञ्चमाश्रमः ।
वर्णानामाश्रमाणां च श्रेष्ठः श्रीवैष्णवाश्रमः ॥

हुआ परम वैराग्य के अधीन जिसका अन्तःकरण है अर्थात् जिसका अन्तःकरण उत्कट वैराग्य से अत्यधिक प्रभावित है उस महापुरुष के लिये यह पञ्चम आश्रम है। पूर्व वर्णित चार आश्रमों में जो कुछ है उनसे अतिरिक्त ही यह मेरा आश्रम है।

श्रीमान् अग्रदासजी के द्वारा विरचित अष्टयाम में भी यह कहा गया है कि चार वर्णों के अतिरिक्त वैष्णव यह पाँचवाँ वर्ण है। और चार आश्रमों के अतिरिक्त वैष्णव पाँचवाँ आश्रम है जो समस्त वर्ण एवं समस्त आश्रमों से श्रीवैष्णवाश्रम अतिशय श्रेष्ठ है।

यह श्लोक निश्चय ही किसी श्रीसम्प्रदाय द्वेषी से प्रक्षिप्त है क्योंकि यह श्रीसम्प्रदाय वैदिक है इस सम्प्रदाय के एक द्वाराचार्य वेद विरुद्ध कैसे लिख सकते हैं। स्मृतियाँ सदाचार एवं आचार्य कृति वेद के अविरोध होने पर ही मान्य होते हैं यह सर्व मान्य सिद्धान्त है अतः यह श्लोक प्रक्षिप्त है। इसके विषय में विशेष विचार पुनः कहीं करुंगा। अन्य कितने लोग तो विरक्त वैष्णवों के द्वारा वर्णाश्रम धर्मका परित्याग करदेना चाहिये कहते हैं एवं प्रमाण के रूपमें यह प्रस्तुत करते हैं-देवता,

श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः प्रतिभाति यतः श्रीसम्प्रदायो वैदिकसम्प्रदायः वेदे च पञ्चमाश्रमगन्धाभावात् स्मृतिशास्त्राणां वेदाविरुद्धत्वे एव प्रामाण्यमिति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः । तथैव विरक्तवैष्णवैः वर्णाश्रमधर्माणां त्यागः कर्तव्यः देवर्षि भूताप्तनृणांपितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन् । सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥ एवमादिभिः प्रमाणाभासैः आश्रमाणां ऋषि, भूत, आप्तजन, मनुष्य एवं पितरों का श्रीवैष्णव सेवक नहीं होता है। हे राजन्? इन पूर्वोक्त देवता आदि का वैष्णव ऋणी भी नहीं होता है। जो पूर्ण रूपसे सर्वतोभावेन समस्त शरणागत के संरक्षक एवं आश्रय हैं उनके पास संसार के समस्त कृत्यों का परित्याग करके जो शरणागत हो गया है वह पुरुष केवल भगवान् मुकुन्द का सेवक है अन्य सिकी का सेवक नहीं। इत्यादि जो प्रमाण जैसे प्रतीत होते हैं किन्तु प्रमाण नहीं है ऐसे प्रमाणाभासों के द्वारा पञ्चम आश्रम की सिद्धि को प्रमाणित करने का असफल प्रयास करते हैं। यह प्रयास प्रशंसनीय प्रयास नहीं है केवल एक हठ मात्र है। यह प्रयास तो जैसे कोई गणेश की रचना करने का प्रयास करता हुआ बन्दर की रचना कर वैठे इस कहावत का अनुरोध करके उलटा ही फल को उत्पन्न कर देगा कि पञ्चम आश्रम को प्रमाणों के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। क्योंकि वर्णाश्रम विहीन को भारत वर्ष में चाण्डाल कहा जाता है। वे वेद बाह्य प्रमाणों को प्रस्तुतकर युक्ति के द्वारा पञ्चम आश्रम को वर्णाश्रम बहिर्भूत कह रहे हैं।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहा गया है कि "जो अज्ञानी पुरुषगण ऊपर से मनोहर प्रवीत होनेवाली किन्तु भीतर से सार विहीन इस पुष्पित वाणी को बोलते हैं एवं यह वेदका कथन है इसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं इसप्रकार से जो प्रतिपादन करनेवाले हैं वे केवल अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति करने में तत्पर हैं। स्वर्ग आदि लोकों के प्राप्ति कामुक हैं। जन्म कर्म आदि के फल को प्रदान करनेवाली भिन्न-भिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण भोग ऐश्वर्य एवं गति आदि के प्रति आसक्त हैं ऐसे भोग ऐश्वर्य आदि के प्रति आसक्त मानवों के जिनकी चेतना शक्ति भोग आदि की लोलुपता के कारण आकर्षित हो चुकी है उनकी समाधि अवस्था में एक तत्त्व निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती है। अर्थात् विविध प्रकार के भोग लालसाओं में भटकते रहते हैं। इस गीता के कथन का अनुशरण कर जो वस्तु अभीष्ट नहीं है उस वस्तु को सिद्ध हो जाना यह परिणाम हो

पञ्चमत्वं प्रमापयितुं प्रयतन्ते, तन्न प्रशंसनीयतामेति संरम्भः । प्रयासोऽयं विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामासवानरम् । इति आभाणकमनुरुद्ध्यविपरीत फलमेव जनयिष्यति । गीतायामभिहितं भगवता श्रीकृष्णेन-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥

जायेगा अर्थात् अपना वड़पन सिद्ध करने के लिये चार आश्रमों के ऊपर वेद के शिर पर पाँचवाँ आश्रम है यह सिद्ध करना चाहते हैं किन्तु यह वर्णाश्रम धर्म विरुद्ध है, अवैदिक है अतः लोक ग्राह्य नहीं है यह बात सिद्ध हो जायेगी क्योंकि हम वैदिक धर्मानुयायी भारतीय लोग वेद को परम प्रमाण मानते हैं तथा वेद से अनुमत शास्त्रों को प्रमाण रूप में स्वीकार करनेवाले हैं और श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्त है। वेद के विपरीत सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाला गौतम बुद्ध के स्वरूप में अवतार धारण किये हुये अर्थात् पृथ्वी पर अवतीर्ण नारायण भी वैदिक सिद्धान्त का अनुव्रजन करनेवाले भारत वर्ष में निवास करनेवाले जन समुदाय के समक्ष अपने सिद्धान्त का समाज के द्वारा अनादर का विषय बनाया गया यह प्रत्यक्ष रूपसे गौत्तम बुद्ध अवलोकन किये। इससे सिद्ध होता है कि वेदशास्त्र के विपरीत एक नया पाँचवाँ आश्रम का सिद्धान्त का अवैदिकत्व सिद्ध हो जाने पर यह श्रीसम्प्रदायीय-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्त भी अवैदिक हों जायेगा। इस श्रीवैष्णव धर्म को वेद विरुद्ध हो जाने पर सरलता पूर्वक यह बात सामने आती है कि यह समाज के आदर का विषय नहीं रहेगा । इसलिये यह पञ्चम आश्रम सिद्ध करने का हठ रखना या स्थापित करने का प्रयास करना हर प्रकार से अनुचित है।

कहा जाता है कि "इतिहास और पुराण पाँचवाँ वेद है" यह कथन तो शूद्रादि का जो वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं हैं उनको वेदाध्ययन करने से जो फल उत्पन्न होता है उस फल की उपलब्धि करने के लिये इतिहास पुराणों का निर्माण किये जाने के कारण दोनों के फल में समानता होने से अर्थात् जो फल वेदाध्ययन करने से उपलब्ध होता है वही फल इतिहास पुराणादि के अध्ययन करने से भी उपलब्ध होता है इसतरह गौणी लक्षणा के द्वारा ही वेदत्व कथन है न कि इतिहास पुराण में साक्षात् वेदत्व है। इसीप्रकार यदि विलक्षणता प्रतिपादन करने की इच्छा से पञ्चमत्व का सिद्ध करने का प्रयास हो तो समस्त प्राणी मात्र का प्रपत्ति शरणागति का अधिकार अन्य विरक्त आश्रमों की अपेक्षा

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रिया विशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

इत्यनुसृत्य अनभिमतसाधनफलकः स्यात् । यतोहि वेदानुमत शास्त्रप्रमाणकाः वयम् वैदिकश्च श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दीयश्रीवैष्णव सिद्धान्तः । वेदविरुद्धसिद्धान्तप्रतिपादकः गौतमबुद्धरूपेण भूमावतीर्ण नारायणोऽपि वैदिकसिद्धान्तानुयायिनां भारतवर्षीयाणां जनतानां समक्षे स्वसिद्धान्तमवमाननाविषयीभूतं प्रत्यक्षमवलोकितवान् । तेन वेदशास्त्र विरुद्धस्य पञ्चमाश्रमसिद्धान्तस्य अवैदिकत्वे सिद्धे श्रीसम्प्रदायीयश्रीवैष्णव श्रीवैष्णवाश्रम में विस्तार से है अर्थात् श्रीवैष्णव धर्म के अनुपालन करने का सभी को अधिकार है इस विषय में किसी को मतभेद नहीं है। क्योंकि स्त्री शूद्र से लेकर चाण्डाल पर्यन्त विशुद्ध अन्तःकरण वाले प्राणी सभी साकेतनायक श्रीरामचन्द्रजी के कैङ्कर्य के अधिकारी हैं किन्तु श्रीवैष्णवाश्रम पञ्चमाश्रम है यह कथन तो सर्वथा अनुचित ही है। वेदों में और धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार ही आश्रमों का प्रतिपादन किये जाने का कारण इनकी संख्या चार ही है पाँच कथमपि नहीं।

प्रमाण का प्रतिपादन करने में वक्ता स्वयं ही पञ्चम आश्रम को वेद तथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध कहते हैं और सभी आश्रमों के अपेक्षा श्रेष्ठ प्रतिपादन करना चाहते हैं यह तो वदतोव्याघात है। अर्थात् अपने ही कथन से साध्य का खण्डन हो जाता है। कहीं पर वेद वचन का स्वीकार करना एवं दूसरे जगह पर स्वीकार नहीं करना ऐसे किसी नियम से शून्य व्यवस्था होने पर अर्धजरतीयत्व अर्थात् आधी वृद्धा आधी युवती वृद्धात्व एवं युवतीत्व यौवन एक आधार में होना जैसे सम्भव नहीं होता है वही दोष हो जायेगा। कोई भी भारतीय जनता वेद विरुद्ध आश्रम में निवास करते हैं और वैदिक सिद्धान्त का अनुपालन भी करते हैं ऐसा देखा नहीं जाता है। भगवान् विष्णु वैदिक देवता हैं अर्थात् वेद के द्वारा विष्णुत्व का प्रतिपादन होता है और वेदशास्त्रानुयायियों का विष्णु देव हैं। यही विषय प्रबोधरत्न माला में कहा गया है-

जगदाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी के द्वारा विधि पूर्वक सम्मानित वेदों द्वारा

धर्मस्यापि च अवैदिकत्वे वेदविरुद्धत्वं सुरामेवापतिष्यति । तस्मात् संरम्भोऽयं सर्वथा अनुचितः एव वेदविरुद्धत्वात् "इतिहासपुराणञ्च पञ्चमोवेद उच्यते" इत्यत्र तु शूद्रादीनां वेदाध्ययनानधिकारिणां वेदाध्ययनजनितफलतुल्य फलावाप्तये तेषां विरचनात् फलसादृश्यात् गौणीलक्षणयैवाभिधानम् न तु साक्षाद्वेदत्वम् । एवमेव वैलक्षण्यबोधनाय सन्तु नाम पञ्चमत्वम् । सर्वेषां प्रपत्तेरधिकाराच्च इतरविरक्ताश्रमापेक्षया श्रीवैष्णवाश्रमे प्रपञ्चता अस्तीत्यत्र न कस्यचिद्विमतिः । यतो हि स्त्रीसूद्रचाण्डालान्ताः शुद्धात्मानः सर्वे श्रीरामकैङ्कर्याधिकारिणः "सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पद-योर्जगत्प्रभोः । अपेक्षते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै" इत्यानन्दभाष्यकारचरणोक्तेः । किन्तु पञ्चमः आश्रमः इति कथनन्तु सर्वथा अनुचितमेव । वेदेषु धर्मशास्त्रेषु च चतुर्णामेवाश्रमाणां निरूप णात् । प्रमाणप्रतिपादने स्वयमेव वक्ता वेदशास्त्रविरुद्धं पञ्चममाश्रमं कथय ति । इति तु वदतो व्याघात एव । कुत्रचिद्वेदवचनस्वीकारः अन्यत्र चास्वीकारः इति नियमरहितायां व्यवस्थायां सत्यामर्धजरतीयन्यायदोषपातात् । नहि केचिद्वेदविरुद्धे आश्रमे निवसन्ति वैदिकसिद्धान्तामनुपालनं च विदधाति । श्रीविष्णुः वैदिकः देवः वेदानुयायिनाञ्च देवः । तदुक्तं प्रबोधरत्नमालायाम्-

प्रशंसित परम मङ्गलकारी श्रीसम्प्रदाय में विरक्तदीक्षा दीक्षितों के हेतु काषाय वस्त्र परिधान की ही व्यवस्था है एवं श्वेत वस्त्र पहनने का भी नियम है एवं अत्यन्त भव्य शिखा सूत्र से युक्त परिलक्षित यह सम्प्रदाय है । लक्ष्मी को आकर्षित करनेवाला श्री तिलक से अलंकृत प्रशंसनीय यज्ञोपवीत से युक्त है । इस श्रीवैष्णव धर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ त्रिदण्ड सहित चतुर्थ आश्रम-संन्यासाश्रम माननीय है ।

हमलोग वेद को प्रमाण माननेवाले हैं प्रस्थानत्रय पर आनन्दभाष्य के द्वारा अलंकरण करके ही श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में साक्षात् श्रीरामजी इस भारत धरा पर अवतार लेकर श्रीसम्प्रदाय को परिष्कृत किये । और सभी प्रकार से सुरक्षित किये । इसलिये आनन्दभाष्यकारजी से अपने दिव्य ग्रन्थों में प्रतिपादित ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास भेद से चार ही आश्रम हैं और श्रीवैष्णव संन्यासी चतुर्थाश्रम में निवास करनेवाले ही हैं न कि पञ्चम आश्रम में । जैसे खरगोश का सींग वाँझ

रामानन्दसुमानिते श्रुतिनुते श्रीसम्प्रदाये शुभे
काषायोऽस्ति पटः सितोऽपि विहितो भव्यः शिखासंयुतः ।
श्रीलश्रीतिलकेनभूषिततमोयज्ञोपवीत स्तुतः
संन्यासोऽस्ति वरस्त्रिदण्डसहितो मान्यश्चतुर्थाश्रमः ॥

वेदप्रामाणकाः वयम्, प्रस्थानत्रयम् आनन्दभाष्येण समलंकृत्य एव श्रीरामानन्दस्वरूपेण साक्षात् श्रीरामः अवतीर्य श्रीसम्प्रदायं परिष्कृतवान् परिपालितवाँश्च । तस्मात् ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यासभेदेन चत्वारः एव आश्रमाः श्रीवैष्णवसंन्यासिनश्च चतुर्थाश्रमवासिनः एव न तु पञ्चमाश्रमवासिनः । शसश्रृङ्गबन्ध्यापुत्रकुर्मक्षीरादिवत् पञ्चमाश्रमस्य स्वीकारः सर्वथा अनुचित एव ।श्रीवैष्णवानामच्युतगोत्रोभवतीत्यनेन श्रीरामकिंकराः श्रीवैष्णवाः भगवतः अनन्यसेवकाः इत्येव प्रतिपाद्यते सविधिविरक्तदीक्षादीक्षितानां न तु ते वेदशास्त्रबहिर्भूताः । इत्यलंभागवतस्व रूपाणां मान्यानां कटाक्षनिरूपेणेतिशम् ॥३१॥

इति श्रीपश्चिमाम्नाय श्रृङ्गपुरस्थ जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधी शस्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेस्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसायां पञ्चमाश्रमनिषेधनात्मकः प्रकरणः परिपूर्णम् ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

का पुत्र, कछुआ का दूध शब्द से भले ही हो लेकिन व्यावहारिक जगत में नहीं होता है ये सव असम्भव है उसीप्रकार पञ्चम आश्रम का स्वीकार भी सर्वथा असम्भव एवं अनुचित ही है । श्रीवैष्णवों का अच्युत गोत्र होता है इससे भगवान् श्रीरामजी के श्रीवैष्णव अनन्य सेवक हैं यही सिद्ध होता है । अच्युत गोत्र कहने से श्रीराम किंकरत्व ही प्रतिपाद्य है न कि वेदशास्त्र बहिर्भूतत्व इतना कहना ही पर्याप्त है भागवत स्वरूप आदरणीय लोगों के प्रति अधिक कटाक्ष करना ठीक नहीं ॥३१॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दा चार्यजी की कृति श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसा में पञ्चमाश्रम निषेध नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

☬ अथ यतीनां सदाचारः ☬

दृष्ट्या पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनः पूतं समाचरेत् ॥१॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कश्चन ।
न चैनं देहमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥२॥

क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येत् आक्रुष्टं कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमन्यथा वदेत् ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेद्दिवा ॥

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥

卐 श्रीवैष्णव संन्यासियों का सदाचार 卐

मार्ग के आगे देखकर दृष्टि से पवित्रकर चरण विन्यास करे अर्थात् आगे कदम बढावे । वस्त्र से छानने के कारण पवित्रकर जल को पीये सत्य से पवित्र वाणी का उच्चारण करे अर्थात् असत्य भाषण न करे । एवं अपने मन से अच्छा बुरा का विचार करने के पश्चात् सम्यक् प्रकार से आचरण करे । यदि कोई अनुचित बोले अथवा वढ़चढ़कर बोले तो संन्यासी पुरुष उसकी प्रतिक्रिया नहीं करे अपितु उसे सहन करे। किसी भी व्यक्ति का कोई भी संन्यासी पुरुष अवमानना नहीं करे । इस शरीर को धारण करके किसी भी प्राणी के साथ शत्रुता नहीं करे अर्थात् किसी का भी विरोध नहीं करे क्रोध करते हुये पुरुष के ऊपर प्रतिक्रिया के रूपमें प्रतिक्रोध नहीं करे। यदि कोई आक्रोश अभिव्यक्त किया हो तो दक्षता पूर्वक उसे अनुकूल वचन कहे। सात द्वारों में विखरी हुई वाणी को उलटी-पलटी नहीं बोले अर्थात् मिथ्या भाषण नहीं करे । आत्मज्ञानानुरागी होकर उदासीन निरामिष भोजी बनकर निवास करे । केवल स्वयं के ही सहयोग से आत्म सुख की कामना से दिन में भ्रमण करे अर्थात् संन्यासी पुरुष रात्रि में भ्रमण नहीं करे । विरक्त पुरुष किसी उत्पाद के कारण अथवा निमित्त विशेष के कारण नक्षत्र विद्या या अङ्ग विद्या के द्वारा उपदेश अथवा वाद विवाद के द्वारा कहीं भी भिक्षा प्राप्ति करने की अभिलाषा नहीं करे । जिस घर में किसी तपस्वी

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोऽभिरपि वा श्वभिः ।
आकीर्णभिक्षुकैर्वान्यैरगारमुपसंव्रजेत् ॥
अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ।
अभिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥
अल्पान्नाभ्यवहारेण रहस्येरासनेन च ।
प्रीयमाणेन विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥

के द्वारा भिक्षा की गयी हो अथवा किसी ब्राह्मण द्वारा भिक्षा ग्रहण किया गया हो पक्षियों से अथवा कुत्तों से या भिक्षुकों से यदि याचनीय घर भरा हुआ हो तो उस घर में भिक्षा करने की अभिलाषा से प्रवेश नहीं करे ।

सम्मानित होने के कारण भिक्षा आदि के लाभ की संन्यासी पुरुष सर्वतोभावेन निन्दा करे । अर्थात् सम्मानित होने का लाभ नहीं उठाये । सम्मानित होने के लाभ उठानेवाला संन्यासी मुक्त होने पर भी बन्धन ग्रस्त होता है । थोडा अन्न भोजन करने से और रहस्य स्थान पर निवास करने से सांसारिक भोग्य विषयों से प्रसन्न नहीं होता हुआ विरक्त पुरुष इन्द्रियों के भोग्य विषयों से इन्द्रियों को उदासीन करे अर्थात् विषयों के प्रति अभिलाषुक इन्द्रियों को नहीं होने दे । विरक्त पुरुष इन्द्रियों का नियमन करने से राग और द्वेष का निर्मूलन करने से तथा प्राणियों की अहिंसा से अपने कर्म के प्रति सफलता को प्राप्त करता है । कर्त्तव्य कर्मों के दोष के कारण उत्पन्न होनेवाले मानवों की गतियाँ परलोक में देखी जाती है । एवं कर्त्तव्य दोष के कारण नरक में पतन होता है । तथा यमलोक में यातनायें भोगनी पड़ती है इसलिये विवेकी पुरुष को लोक शास्त्र विरुद्ध कर्त्तव्य किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिये । मनोभिलषित वस्तुओं से वियोग तथा अप्रिय वस्तुओं से सदुपयोग एवं वृद्धावस्था से पराभव, एवं रोगों से उत्पीडन, देह आदि से ऊर्ध्व गमन तथा ऊर्ध्व लोकों से पुनः गर्भ में आगमन अनन्त योनियों में जन्म ये सबकुछ अन्तरात्मा का पतन अधर्म के कारण होता है एवं शरीर धारियों को अधर्म के कारण ही दुःखों का संयोग होता है इसलिये विरक्त ज्ञानी पुरुष को अधर्माचरण से सदैव दूर रहना चाहिये । धर्माचरण के लिये जन्म आनन्द का नित्य संयोग तथा समाधि के द्वारा सूक्ष्म तत्त्व का अवलोकन एवं परमात्मा का साक्षात्कार शरीरों में ही युक्ति अन्वेषण एवं उत्तम मध्यम

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानां कर्मतत्त्वाय कल्पते ॥
अपेक्षते गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥
विप्रयोगं प्रियैश्चैव सुप्रयोगमथाप्रियैः ।
जरया चाभि भवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥

तथा अधम शरीरों में ऊर्ध्वगति का उपायान्वेषण विरक्त महापुरुषों को आवश्यक रूपसे करना चाहिये । इसप्रकार सदाचरण के विषय में मनुस्मृतिकार कहे हैं ।

और विष्णु स्मृति में भी उसी प्रकार विस्तार पूर्वक सदाचार वर्णन किया गया है । इस संसार में मनुष्यों का अक्षय सुखों का संयोग धार्मिक कृत्य के सेवन से ही होता है । इसलिये जो मान एवं अपमान प्रसन्नता एवं उद्वेग को उत्पन्न करनेवाले ये दोनों मानवों के लिये कहे गये हैं अर्थात् सम्मान से जो प्रसन्नता होती है एवं निरादर से जो सामान्य मनुष्य को उद्वेग उत्पन्न होता है ये दोनों ही योगी पुरुषों के लिये विपरीत अर्थवाले हैं । अर्थात् सम्मान से उदासीन रहनेवाला एवं अपमान से प्रसन्न रहनेवाला संन्यासी अपने उद्देश्य में सफल होता है । अर्थात् मान अपमान जो ये दोनों सामान्य मनुष्य के हेतु क्रमशः प्रसन्नता एवं उद्वेगकारी हैं इसके ठीक विपरीत योगी पुरुषों का मान उद्वेगकारी एवं अपमान प्रीतिकारी यदि हो तो ये दोनों सिद्धिकारक होते हैं। जो ये दोनों मान-अपमान हैं वे ही क्रमशः विष और अमृत कहे गये हैं। अर्थात् मान विष है एवं अपमान अमृत है । जिसप्रकार साधारण मनुष्य अपमान करते हैं और निन्दा करते हैं तो उससे अयुक्त होकर अर्थात् मानापमान से प्रभावित न होकर योगी पुरुष यह विचार करता है कि यह अपमान या निन्दा से मेरा स्थान दूषित नहीं होता है इस तरह अनुभव करता है । योगी पुरुष तत्त्वभूत वस्तु का ही संसेवन करे जिससे कि मोक्ष प्राप्त करे । अन्य जो विभिन्न प्रकार की सांसारिक क्रियायें होती हैं वे सव योगियों के सदैव योग में विघ्नकारी होते हैं । जो भी वेदशास्त्र में काम्य कर्म कहे गये हैं । और जो निषिद्ध कर्म कहे गये हैं उन समस्त कर्मों का परित्याग करके नित्यकर्म का सम्यक् प्रकार से परिपालन करे । और इसीप्रकार यम स्मृति में कहा है-

जो यह योगी पुरुष के दाहिनी भुजा को चन्दन से लेपता है और जो वांयी भुजा को काटता है ये दोनों ही कार्य बराबर ही है इस प्रकार योगी पुरुष तत्त्व का

देहादुत्क्रमणं तस्मात् पुनर्गर्भे च संभवम् ।
योनिकूटसहस्त्रेषु सृतिश्चास्यान्तरात्मनः ॥
अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थं प्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥
सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु चैवोपपत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ इति मनुः ॥

तथा च विष्णुस्मृतौ-

मानावमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौनृणाम् ।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥

अवधारण करे। इसीप्रकार प्रिय एवं अप्रिय के विषय में योगी पुरुष की भावना शतत होनी चाहिये। अभिमत वस्तु हो या द्वेष्य वस्तु हो दोनों के प्रति योगी पुरुष को समान व्यवहार करना चाहिये।

साधु पुरुष के प्रति और पापी पुरुष के प्रति जो समान भावना रखते हैं और जो शत्रु के प्रति तथा मित्र के प्रति जो समान भावना रखते हैं। ठण्डी गर्मी तथा सुखदुःख में जिनका समभाव हैं एवं आसक्ति से विशेष रूपसे रहित हैं जो सत्कार पूर्ण व्यवहार को पाकर प्रसन्न नहीं होता है एवं अनादर पूर्ण व्यवहार को पाकर क्रोधित नहीं होता है। जिसके लिये राग और द्वेष दोनों ही समान हैं सभी वस्तुओं से निस्पृह रहनेवाला आकांक्षारहित पुरुष ही वेदशास्त्र का तत्वज्ञानी मुनि कहा जाता है। सुनकर, स्पर्श करके, देखकर, खाकर और सूँघकर जो मनुष्य प्रसन्न नहीं होता है अथवा अप्रसन्न भी नहीं होता है वही पुरुष जितेन्द्रिय कहा जाता है। जिसका हाथ पञ्चल नहीं है अर्थात् किसी का वस्तु लेने के लिये जो आकुल नहीं होता है और जिसका पैर चञ्चल नहीं है अर्थात् लोलुपता के कारण जो इधर-उधर भटकता नहीं है और जिसका आँख चञ्चल नहीं है अर्थात् रूप माधुर्य के कारण जो आकर्षित नहीं होता हो। जिसकी त्वचा चञ्चल न हो अर्थात् स्पर्श जनित सुख का लोभी न हो और नासिका जिसकी चञ्चल न हो अर्थात् सुगन्धि का लोभी नहीं हो एवं वाणी जिसकी चञ्चल न हो अर्थात् शास्त्र सम्मत वचन ही बोले असंगत वचन नहीं बोले ऐसे पुरुष को ही शिष्ट पुरुष कहा जाता है अर्थात् उपर्युक्त गुणों का होना शिष्ट पुरुष

मानावमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ।
अवमानोऽमृतं तत्र मानस्तु परमं विषम् ॥

यथा चैवावमन्यन्ते जनाः परिवदन्ति च ।
तावयुक्तश्चरेद्योगी स्थलं मम न दुष्यते ॥

सारभूतमुपासीत येन मुक्तिमवाप्नुयात् ।
क्रियाऽन्या बहुधा या तु योगविघ्नकरी सदा ॥

काम्यानि यानि कर्माणि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि तानि परित्यज्य नित्यकर्म समाचरेत् ॥

तथा च यमस्मृतौ-

यश्चास्य दक्षिणं बाहु चन्दनेनानुलिप्यति ।
सव्यं वास्य च यस्तक्षेत् समौ ताववधारयेत् ॥

का लक्षण है। पुराणों का सुनना, सुने हुये विषयों का मनन पूर्वक पुनः-पुनः अभ्यास भक्ति पूर्वक प्रतिदिन करे। पुराण सुनने पर मूर्ख पुरुषों को भी भक्ति उत्पन्न हो जाती है अतः अविच्छिन्न भक्ति से युक्त होकर पुराणों का अभ्यास करे। पुराणों का पुनः-पुनः पठन करने से मुनि परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी में उत्कृष्ट भाव को प्राप्त करता है। शुद्ध अन्न एवं अन्न के प्राप्त होने के स्थान पात्र आदि शुद्ध होने से एवं विशेष प्रकार का स्वाद रहित होने से अन्तः सत्व निर्मल होता है एवं मलिन होने से मलिन होता है। अर्थात् अन्न पवित्र हो एवं अन्न दाता व्यक्ति पवित्र हो। विभिन्न घरों से संञ्चित किया गया हो इस कारण उसमें एक स्वाद नहीं होगा अनेक प्रकार के मिला जुला स्वाद होगा। उस अन्न से अन्तःकरण विशुद्ध होता है दाता अन्न आदि दूषित होने से अन्तःकरण अपवित्र होता है। मांस शोणित का समूह, मेदा, मज्जा, हड्डी आदि का ढेर नख एवं रोम से मिश्रितवसा आदि जिसमें कीचड है। मूत्र एवं विष्ठा से भरा हुआ दूषित गन्धवाला चमडा से बन्धा हुआ यह शरीर वायु से परिपूर्ण जिसका स्थान है। मलका जो आधार है अर्थात् जिसमें कोई भी तत्त्व महत्वपूर्ण नहीं है। ऐसे दीवार में बना हुआ चित्र के समान पानी के बुलबुला के समान नश्वर नित्य आत्मा एवं अनित्य शारीरिक तत्व से मिला हुआ राग द्वेष आदि शारीरिक तत्त्वों का संघात जिसमें एक स्तम्भ है नौ द्वार है तीन खूटे हैं इसप्रकार का यह पाञ्चभौतिक शरीर है वह स्नेह

एवमस्य भवेद्भावो नित्यमेव प्रियाप्रिये ।
इष्टो वा यदि वा द्वेष्यः समः सर्वत्र वर्त्तयेत् ॥
समः साधौ च पापे च शत्रौ मित्रे च वै समः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥
न प्रहृष्यति सन्माने नापमाने च कुप्यति ।
रागद्वेषौ समौ यस्य स मुनिः सर्वनिःस्पृहः ॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च मुक्त्वा घ्रात्वा च योनरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् ।
न च त्वक्चपलो वापि न घ्राणचपलो भवेत् ॥
न च वाक्चपलोवास्यादिति शिष्टस्य लक्षणम् ।
पुराणश्रवणाभ्यासं भक्तितो नित्यमाचरेत् ।

के चारदिवारी से घिरा हुआ है। मन की प्रबलता ही कार्य करता है विशेष प्रकार के भोग्य विषयों से आक्रान्त चेतना से अधिष्ठित वृद्धावस्था और शोक से अत्यधिक प्रभावित रोगों का आयतन विकलता युक्त-रजोगुण से भरा हुआ विनाश स्वभाव वाला और आयाश से भरा हुआ इस शरीर को अर्थात् देहाभिमान को त्याग दे। स्नान, जप, तथा ध्यान, शौच, आहार की लघुता, इन सवको जो पुरुष धारण करता है वही पुरुष मुक्त हो सकता है। अन्य किसी प्रकार से मुक्त नहीं हो सकता। परिव्राजक संसार के सभी प्राणियों को अपनी ओर से अभय दान देकर संन्यासाश्रम की ओर प्रस्थान करता है। और जो मुनि संसार के समस्त प्राणियों को अभय दान देकर आवागमन करता है उस संन्यासी पुरुष को संसार में कभी भी किसी भी प्राणी से भय नहीं है। समस्त प्राणियों के लिये अभय दान देकर जो निवृत्त होता है वह प्राणी मात्र से निर्भीक होकर रहता है।

महाभारत में श्रीवैष्णव संन्यासियों का संसार में सभी के अपेक्षा अधिक पूज्य होने के विषय में कहा गया है कि भगवान् विष्णु पाण्डवों से कहते हैं कि जहाँ पर श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष रहता है मैं वहीं पर रहता हूँ। अतः मुझे परिव्राजक पुरुष समझो। परिव्राजक पुरुष की पूजा करने पर परब्रह्म परमेश्वर मैं श्रीकृष्ण पूजित होता हूँ।

पुराणश्रवणेभक्तिर्मूर्खस्यापि प्रजायते ।
भक्त्या विच्छिन्नया युक्तस्तस्मात्पौराणमभ्यसेत् ।
तदभ्यासात्परंभावमापद्येत दृढं मुनिः ॥

अन्नाच्छुद्धागमाच्छुद्धाद्विशेषरसवर्जितात् ।
निर्मलं जायते सत्वं मलिनं मलिनाद्भवेत् ।

मांसशोणितसंघातं मेदोमज्जास्थिसंचयम् ।
नखरोमसमायुक्तं बसाप्रभृतिकर्दमम् ॥

पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां दुर्गन्धं चर्मबन्धनम् ।
देहोऽनिलमयंधाम मलाधारमसारकम् ॥

चित्रभित्तिप्रतीकाशमपांफेनोपमं परम् ।
नित्यानित्यसमायुक्तं रागद्वेषसमुच्चयम् ॥

एकस्तभ्भे नवद्वारं त्रिस्थूणं पाञ्चभौतिकम् ।
प्रीतिप्राकारसंयुक्तं मनः प्राबल्यकारकम् ॥

विशेषविषयाक्रान्तं चेतनाधिष्ठितं परम् ।
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥

एवं मुझे पूजित होने पर वेदशास्त्र प्रसिद्ध समस्त देवता पूजित हो जाते हैं। इसका अभिप्राय हुआ कि भगवान् विष्णु सर्व देवमय हैं और विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी में विराजमान रहते हैं। अतएव विरक्त श्रीवैष्णवसंन्यासी भी सर्वदेवमय हैं। उनकी पूजा सत्कार सेवा करने पर सभी देवताओं के पूजा, सत्कार सेवा आदि का फल मिलता है। एकवार ही एक श्रीवैष्णव संन्यासी के भोजनकर लेने पर अनन्त कोटि गुणा सत्कर्म का फल मिलता है तो बहुत श्रीवैष्णवों के भोजन करने से कितना फल गिलेगा इसकी कोई सीमा नहीं है। संक्रान्ति के दिन, ग्रहण के दिन तथा व्यतीपात एवं क्षयाह के दिन में श्राद्धकाल समझना चाहिये। वह श्राद्धकाल तब होता है जब गृहस्थ के घर में श्रीवैष्णवसंन्यासी का आगमन होता है। अतः श्रीवैष्णवसंन्यासी पुरुष के अपने घर में आगमन होने पर समस्त पुण्यफलों की प्राप्ति के लिये अवश्य ही पूजा सेवा करनी चाहिये। कोई पुण्य अवसर हो अथवा नहीं हो जिसके घर में श्रीवैष्णवसंन्यासी पुरुष का आगमन होता है उस समय अपने पूर्वजों को उद्देश्य करके अपने पितरों की तृप्ति कामना

रजस्वलमनित्यं च भूतायासमिमं त्यजेत् ।
स्नानं जपं तथा ध्यानं शौचमाहारलाघवम् ॥
य एतत्पञ्चकं कुर्यान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥
परिव्राजकः सर्वभूताभयं दत्वाप्रतिष्ठते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ॥
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु निवर्त्तते ॥
यतीनां पूज्यत्वं महाभारते उक्तम्-
यत्र भिक्षुरहं तत्र तं च मां विद्धि पाण्डव ।
पूजिते पूजितोऽहं वै पूजिताः सर्वदेवताः ॥
सकृदेकेन भुक्तेन कोटि कोटि गुणं भवेत् ।
किं पुनर्बहुभिर्भुक्तैस्तेभ्यः संख्या न विद्यते ॥
संक्रान्तौ ग्रहणेचैव व्यतीपाते दिनक्षये ।
श्राद्धकालः सविज्ञेयो भिक्षौ तु गृहमागते ॥

करनेवाले पुरुषों को अवश्य ही भोजनादि प्रदान कर देना चाहिये ।

इस सन्दर्भ में शातातप स्मृतिकार भी कहते हैं कि वटुक पुरुष के उद्देश्य करके दिया हुआ दान समान मात्रा में फलदायी होता है। गृहस्थ पुरुष को दिया गया दान द्विगुण फलदायी होता है एवं वानप्रस्थ आश्रम में निवास करनेवाला पुरुष को दिया गया दान त्रिगुण होता है और संन्यस्त पुरुष को दिया गया दान अनन्त फलदायी होता है।

और कात्यायन स्मृतिकार भी कहते हैं जो सांसारिक सभी प्रकार की आसक्ति का परित्याग करदिये हैं ऐसा श्रीवैष्णवसंन्यासी पुरुष यावज्जीवन काम, क्रोध, लोभ, मोह मान, मद, ईर्ष्या आदि दोषों को यावज्जीव परित्यागकर दे एवं इसप्रकार विरक्त जीवन का नित्य निर्वाह करता हुआ यति परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामजी को प्राप्त करता है।

शुक्र स्मृति में भी कहा गया है कि सांसारिक समस्त आसक्तियों का त्याग करनेवाला क्रोध के ऊपर विजय प्राप्त करनेवाला, स्वल्प मात्रा में आहार करनेवाला, समस्त इन्द्रियों को एवं अपने मनको समाधि में लगावे । अर्थात् बुद्धि पूर्वक मनको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में एकाग्र करे ।

काले वा यदि वा काले भिक्षुर्यस्य गतो गृहम् ।
पितृनुद्दिश्यदातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छताम् ।

शातातपश्चाह-

वटौ तु समदत्तं स्याद् गृहस्थे द्विगुणं भवेत् ।
वानप्रस्थे तु त्रिगुणं यतौ दत्तमनन्तकम् ॥

कात्यायनश्चाह-

कामक्रोधादिकान्दोषान्वर्जयेद्यावदायुषम् ।
एवं स वर्त्तयन्नित्यं ब्रह्मसम्पद्यते यतिः ॥

उशनाश्चाह-

मुक्तसङ्गोजितक्रोधो लब्ध्वाहारोजितेन्द्रियः ।
विधायबुद्धिद्वाराणि मनोध्याने निवेशयेत् ॥

व्यासश्चाह-

यत्पूर्वमभिनिर्दिष्टमात्मज्ञानं मया पुरा ।
तत्सर्वं यत्नतोऽभ्यस्येत्सर्वसङ्गविवर्जितः ॥

लोकयात्रां प्रयत्नेन वर्जयेदात्मचिन्तकः ।
नानोपनिषदोयत्नादभ्यस्येन्मुक्तिहेतवे ॥

आपस्तम्बश्चाह-

शून्यागारेषु घोरेषु भवत्याखुः सुदारुणः ।
सोऽचिराज्जायते गर्भेश्वास्याद् द्वादशजन्मसु ॥

और व्यास स्मृतिकार कहते हैं कि मुझसे पूर्वकाल में जो आत्मज्ञान के विषय में विवेचन किया गया है उन सभी का पूर्ण प्रयास के साथ सांसारिक सभी प्रकार के आसक्तियों से शून्य होकर पुनः-पुनः अभ्यास करे। लौकिक व्यवहार का पूर्ण प्रयास के साथ आत्मचिन्तक पुरुष सर्वथा परित्याग करे। विभिन्न प्रकार के उपनिषदों को अपनी मुक्ति की कामना से अभ्यास करता रहे।

आपस्तम्ब स्मृतिकार भी कहते हैं इस भौतिक संसार में जो व्यक्ति मैं संन्यास दीक्षा धारण करुँगा इसप्रकार की पहले प्रतिज्ञा करके पीछे संन्यास दीक्षा धारण नहीं करता है ऐसा मिथ्या वचन से जला हुआ वह व्यक्ति घोर अन्धकार में डूबता है एवं

भासो विंशतिवर्षाणि नववर्षाणि शूकरः ।
अपुष्टोऽप्यफलोवृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥
इह पूर्वं प्रतिज्ञाय संन्यासं न करोति यः ।
मिथ्यावचनदग्धोऽसौ सोऽन्धेतमसि मज्जति ॥

लिखितस्मृतौ चोक्तम्-

नानध्यात्मग्रन्थरतिर्नच ज्यौतिषिको भवेत् ।
न व्याधिभूतवैतालांश्चिकित्सेद्धर्मतोऽपि च ॥

मृत्यु के पश्चात् भयावह शून्य घरों में भयंकर चूहा के स्वरूप में जन्म धारण करता है तत्पश्चात् थोड़े ही दिनों के वाद में पुनः मरकर गर्भ में जाता है तथा बारह जन्मों तक कुत्ता की योनि में जन्म लेता है इसके बाद बीस वर्षों तक भासपक्षी होता है। नौ वर्षों तक शूकर योनि में जन्म लेता है। पुनः जिसमें फूल और फल नहीं हो इसप्रकार का कण्टकाकीर्ण वृक्ष के रूप में जन्म लेता है अतः संन्यास दीक्षा धारण करने की प्रतिज्ञा करके अवश्य ही संन्यास दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

और लिखित स्मृति में भी कहा है विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी को अध्यात्म ग्रन्थों से अतिरिक्त ग्रन्थों में अनुरक्त नहीं होना चाहिये। एवं नक्षत्र विद्या ज्ञानी ज्योतिषी भी नहीं बने। एवं रोग, भूत, वैताल, आदि का चिकित्सक भी नहीं बने। अधिक शिष्यों का संग्रह नहीं करे तथा आत्म विद्या का प्रकाशन भी नहीं करे। लोकरञ्जक संस्कार पूर्ण वाणी नहीं बोले एवं बालक तथा गूँगा व्यक्ति के समान आत्मविद्यारत होकर जीवन निर्वाह करे। परिव्राजक वृत्ति धारण करने के पश्चात् सदैव संन्यास धर्म का तीन वर्षों तक पालन करते हुये समाधि निष्ठ होकर जो इसप्रकार सदैव रहता है वह इस शरीर को त्याग करने के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिये भगवान् के परम पद सभी लोकों का सर्वोत्कृष्ट स्थान साकेतधाम के भगवत्कैङ्कर्य रूप नित्यपार्षदत्व के ऐश्वर्य की कामना करे। भले ही कैवल्यदायक संन्यासाश्रम को प्राप्त करके तीन दिन भी रहे पर आश्रमोचित धर्म पालन करके शरीर त्याग करने पर नित्यपार्षदत्व को प्राप्त करता है।

देवल स्मृति में तो कहा गया है कि जिस सन्यस्त पुरुष के लिये शत्रु और मित्र दोनों ही समान हैं। शास्त्र वर्जित परिग्रहों से जो रहित है जो ब्रह्मचर्य व्रत को

न शिष्यसंग्रहं कुर्यान्न स्वविद्यां प्रकाशयेत् ।
संस्कृतान्न वदेद्वाणीं बालवन्मूकवच्चरेत् ॥
संन्यस्य यतिधर्मांश्च कुर्वाणो वत्सरत्रयम् ।
योगनिष्ठः सदा भूत्वा मोक्षं प्रेत्य स विन्दति ॥
तस्मादैश्वर्यमाकांक्षेत् तद्विष्णोः परमं पदम् ।
कैवल्याश्रममासाद्य चरेद्दिनमपि त्रयम् ॥

देवलस्मृतौ तु अभिहितम्-

तुल्यारिमित्रो निष्परिग्रहो ब्रह्मचारी माङ्गल्यव्यवहारे जीवशिक्षारत्न धनधान्यविषयोपभोगसम्पर्केषु दर्पमायामोहहर्षविरोधविस्मयविवादतर्जनादि वर्जनमिति यतिधर्मः ।

परिपालन करनेवाला है मङ्गलजनक व्यवहार में जीवों को शिक्षा देने के लिये रत्न, धन, धान्य, सांसारिक विषयों का उपभोग से सम्पर्क, अभिमान, माया, मोह, हर्ष, विरोध, आश्चर्य, विवाद, किसी को डराना, धमकाना आदि परिव्रज्या के विरुद्ध कर्त्तव्यों से रहित शास्त्र विहित कर्त्तव्य करना संन्यास धर्म है ।

भोजन और औषधि ये दोनों का सेवन विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष सद्गृहस्थ के ही घर में करे । और प्रतिदिन भोजन हेतु भिक्षा करे । उतनी ही मात्रा में भिक्षा करे जिसमें कि कुछ भी शेष नहीं रहे । संन्यासी पुरुष प्रतिदिन भोजन और औषधि को तत्काल के लिये ही ग्रहण करे । संग्रह करने हेतु ग्रहण नहीं करे । यदि मोह ममतावश अपने लिये आहार औषधि आदि को इकट्ठा करके रखता है तो वह नरक गामी होता है। जो मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त ऐसे साधु पुरुषों के माध्यम से धर्म सञ्चय हेतु साधनों को संग्रहीत करे । जो निवृत्त पुरुष हैं अर्थात् जिसके मोक्ष आदि की ओर गति नहीं है ऐसे पुरुषों से असावधानीवश भी किसी तरह का धर्म साधन ग्रहण नहीं करना चाहिये । संसार के सभी धर्मों का पूर्ण रूपसे परित्याग करके यतिधर्मों का परिपालन करे । यतिधर्म से जो व्यक्ति पुनः परिभ्रष्ट हो जाता है वह किसी भी धर्मों के फल को प्राप्त नहीं करता है । इसी वस्तु को देवल ने कहा है कि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से लेकर शुक्लपंक्ष की प्रतिपद से पूर्व जो तिथि है उसे ऋतु सन्धि कहते हैं । उस ऋतु सन्धि काल में विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष को यदि पञ्चकेशधारी नहीं हो तो क्षौरकर्म कराना चाहिये । और लिखित स्मृतिकार कहते हैं-

आहारमौषधं चैव सद्गृहस्थगृहे यतिः ।
प्रत्यहं चैव भिक्षेत यथा शेषं न तिष्ठति ॥
आहारमौषधं चैव तत्कालार्थं हितं यतिः ।
आत्मार्थं धारयेन्मोहान्नरकं प्रतिपद्यते ॥
आददीत प्रवृत्तेभ्यः साधुभ्यो धर्मसाधनम् ।
नाददीत निवृत्तेभ्यः प्रमादादपि किञ्चन ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य यतिधर्मं समाचरेत् ।
यतिधर्मात्परिभ्रष्टो न धर्मफलमश्नुते ॥

अथ वपनादयः प्रायश्चित्तसहिताः कथ्यन्ते-तदाह देवलः-

ऊर्ध्वं सितचतुर्दश्याः प्रतिपद्यधरातिथिः ।
ऋतुसन्धिः स विज्ञेयो वपनं तत्र कारयेत् ॥

लिखितश्चाह-

ऋतुसन्धिषु सर्वत्र चतुर्मास्यान्तरं विना ।
पौर्णमास्यां शिखाः वर्जं मुण्डयेत शिरो यतिः ॥

सभी ऋतु सन्धि कालों में चातुर्मास्य के पश्चात्, अर्थात् चातुर्मास्य काल को छोड़कर समस्त ऋतु सन्धि में अर्थात् प्रत्येक अमावास्या तिथि को और पूर्ण मासी तिथि को शिखा को छोड़कर श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष को मुण्डन कराना चाहिये । यदि कथञ्चित् व्याधि आदि से ग्रस्त हो अथवा अन्य कोई कारण हो या राजोपद्रव अथवा चोरी आदि का उपद्रव हो तो आनेवाली आगामी जो पौर्णमासी आदि तिथि हो जबतक कृष्णपक्ष की पञ्चमी न हो जाय तबतक शिखा को छोड़कर क्षौर कर्म करा लेना चाहिये ।

मनु स्मृतिकार भी कहते हैं-जो नख केश दाडी मूँछ का मुण्डन करा लिये हैं पात्र दण्ड एवं काषाय वस्त्र को धारण करते हैं । नियमानुसार किसी भी प्राणी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं देते हुये प्रतिदिन विचरण करे । धर्मशास्त्रकार देवल कहते हैं कि-यदि कथञ्चित् असावधानीवश अमावास्या पूर्णिमा आदि पर्व सन्धि में मुण्डन कराते समय शिखा रखकर मुण्डन कराने के नियम का उल्लङ्घनकर शिखा सहित मुण्डन करा ले तो विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष प्रमादवश नियम उल्लङ्घन के कारण कृच्छ्र प्राजापत्य

अलभ्ये व्याधिविद्धाभ्यां राजचौराद्युपद्रवे ।
वापर्यत्पौर्णमास्यादि यावत्स्यात्कृष्णपञ्चमी ॥

मनुः-
कृत्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥

देवलः-
मौण्ड्यं शिखा विकल्पं वा यदि लुम्पेत्प्रमादतः ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥

गालवः-
त्रिस्थानलोमवपनं कृत्वा प्राजापत्यं कृत्वा प्राणायामशतं कुर्यात् ।

त्रिदण्डजलपवित्रसंयोगविषये गालवश्चाह-जलपवित्रादानं बन्धनं च प्रणवेन कुर्यात् । त्रिदण्डजलपवित्रवियोगं न कुर्यात् । प्रमादाद्वियोगकरणे आचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनराचमेत् । स्नानभोजनकाले तु त्रिदण्डवियोगं

व्रत करने के पश्चात् ही शुद्ध होता है। अतः श्रीवैष्णव संन्यासी को शिखा छोड़कर ही मुण्डन कराना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं। गालव धर्मशास्त्रकार का वचन है कि-कक्ष उपस्थ आदि तीन स्थानों के लोमका वपन (काटते हैं) करते हैं तो यह दूषित कार्य करके प्राजापत्य व्रत करे। तथा प्राजापत्य करके एक सौवार प्राणायाम प्रायश्चित्त रूपमें करे।

त्रिदण्ड एवं जल पवित्र के विषय में गालव स्मृतिकार कहते हैं कि-जल पवित्र का ग्रहण एवं बन्धन ॐ कार मन्त्र अर्थात् प्रणव का उच्चारण करके करे। त्रिदण्ड एवं जल पवित्र को कभी भी अलग नहीं करे यदि अनवधानता (असावधानीवश) ये त्रिदण्ड और जल पवित्र कथञ्चित् अलग हो जाय तो आचमन करके तीनवार प्राणायाम करके पुनः आचमन करे स्नान-शौच भोजनादि काल में त्रिदण्ड वियोग स्वाभाविक है पर अन्य काल में प्रमादवश वियोग हो जाय तो आचमनकर तीनवार प्राणायामकर पुनः आचमन करे। कमण्डलु एवं जल पवित्र पात्रों का आपस में संघर्ष या खण्डित हो जाय तो उन दोनों का तत्काल परित्यागकर नियमानुसार दूसरा धारण करना चाहिये।

स्वाभाविकमतस्तन् न दोषभागन्यकालेतु न कुर्यात् । प्रमादात्करणे अप आचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनराचामेत् । कमण्डलुजलपवित्रपात्रसंधर्षणे सद्यस्त्यागो विधीयते । दण्डदूषणे-

दण्डं मन्त्रेण गृह्णीयाज्जप्त्वा पौरुषसूक्तकम् ।
इतरेषां तु राजेन्द्र सद्यस्त्यागो विधीयते ॥
न दण्डेन विना ग्रामे गृहाद् गृहमपि व्रजेत् ।
प्राणायामांस्तथा कुर्यात् वने चाध्वव्यतिक्रमे ॥
यद्यदण्डोगृहं गच्छेद्वनं वा त्विषुमात्रतः ।
नीडं प्रतिनिवर्तेत प्राणायामास्त्रयं ततः ॥

दण्ड को दूषित हो जाने पर-सहस्त्रशीर्षा आदि सोलह ऋचाओं वाला सूक्त पढकर विधिपूर्वक दूसरे दण्डों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक धारण करे। अन्य साधनों को दूषित हो जाने पर सद्यः त्यागकर देने का विधान किया गया है। श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष विना दण्ड धारण किये एक घर से दूसरे घर पर्यन्त भी नहीं जाय, तथा वन में मार्ग का विशेष प्रकार का उल्लङ्घन होने पर प्राणायाम का आचरण करे। यदि श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष विना दण्डधारण किये हुए किसी घर में जाय अथवा एक क्षण पर्यन्त भी वन में जाय तो अपने आवास स्थल पर लौटकर आजाय, तत्पश्चात् तीनवार प्राणायाम करे। त्रिदण्ड आसन पात्र आदि का किसी भी कारण से वियोग नहीं होना चाहिये। अर्थात् त्रिदण्ड आदि के विना नहीं रहना चाहिये। यदि इनमें से किसी भी वस्तु का वियोग हो जाय तो इसके सम्बन्ध में प्रायश्चित्त कहते हैं→ विरक्त श्रीवैष्णव संन्यासी पुरुष त्रिदण्ड का वियोग होने पर एक सौ प्राणायाम समाचरण करे।

हे जानकीवल्लभ हे अनन्त हे जगन्निवास हे श्रीराम हे राजेन्द्र आपको भूयो भूयः प्रणाम है। हे प्रभो हे नाथ आप मुझ अनाथ को सदैव सनाथित करें। हे साकार श्रीरामजी दीनों पर दया करनेवाले आप मुझपर दया करें। राजाधिराज के पुत्र परात्पर ब्रह्म स्वरूप स्वच्छ सुप्रसन्न मुखकमल से शोभित शरणागत प्रिय श्यामल मनोहर स्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी के लिये मेरा सदैव प्रणाम है जो सदैव अभिमत फल प्रदान करते हैं। हे नाथ आपके चरणपादुका का मैं प्रेम पूर्वक पूजन करता हूँ। हे कृपालु

त्रिदण्डासनपात्रादेर्न वियोगः कथञ्चन ।
वियोगात्पतते भिक्षुः प्रायश्चित्तं तदुच्यते ॥
त्रिदण्डस्य वियोगे तु प्राणायामशतं चरेत् ।
श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास ? श्रीराम ? राजेन्द्र ? नमोनमस्ते ।
सदा सनाथं कुरुमामनाथं, नाथप्रभोदीनदयालुमूर्त्ते ॥१॥
राजेन्द्रपुत्राय परात्पराय, स्वच्छाय सस्मेरशुभाननाय ।
श्यामाय रामाय सह प्रियाय, नमः सदाभीष्टफलप्रदाय ॥२॥
प्रीत्यार्चनं ते करवाणि पादुकां, प्रदेहि मह्यं कृपया कृपालो ।
सह प्रियस्त्वं हृदये वस प्रभो, मुखे यशो नाम गुणानुवादम् ॥३॥
दयालो जानकीनाथ ? महाराजकुमारक ? ।
अभीष्टं कुरु हे नाथ शरणागतवत्सल ? ॥३२॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसायां यतीनां सदाचारनामकः प्रकरणः परिपूर्णम् ।

श्रीरामः शरणं मम

आप अपनी चरणपादुका पूजा करने के लिये मुझे प्रदान करें। आप साहचर्य प्रिय हैं अतः मेरे हृदय में निवास करें एवं मेरे मुख से आपका नाम तथा गुण एवं सत् कीर्ति का उच्चारण होता रहे।

हे परम दयालु श्रीजानकीनायक महाराज श्रीअयोध्याधीश श्रीमान् दशरथ के कुमार हे नाथ मेरी अभीष्ट कामना सफल करें, क्योंकि आप शरणागत के परमानुरागी हो। शरणागतजन आपके अतिप्रिय हैं। अतः मुझ दीन पर आप असीम कृपा करें ॥३२॥

इसप्रकार आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति श्रीवैष्णव संन्यासमीमांसा में यतियों का सदाचार नामक प्रकरण परिपूर्ण हुआ।

卐 श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये 卐